इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

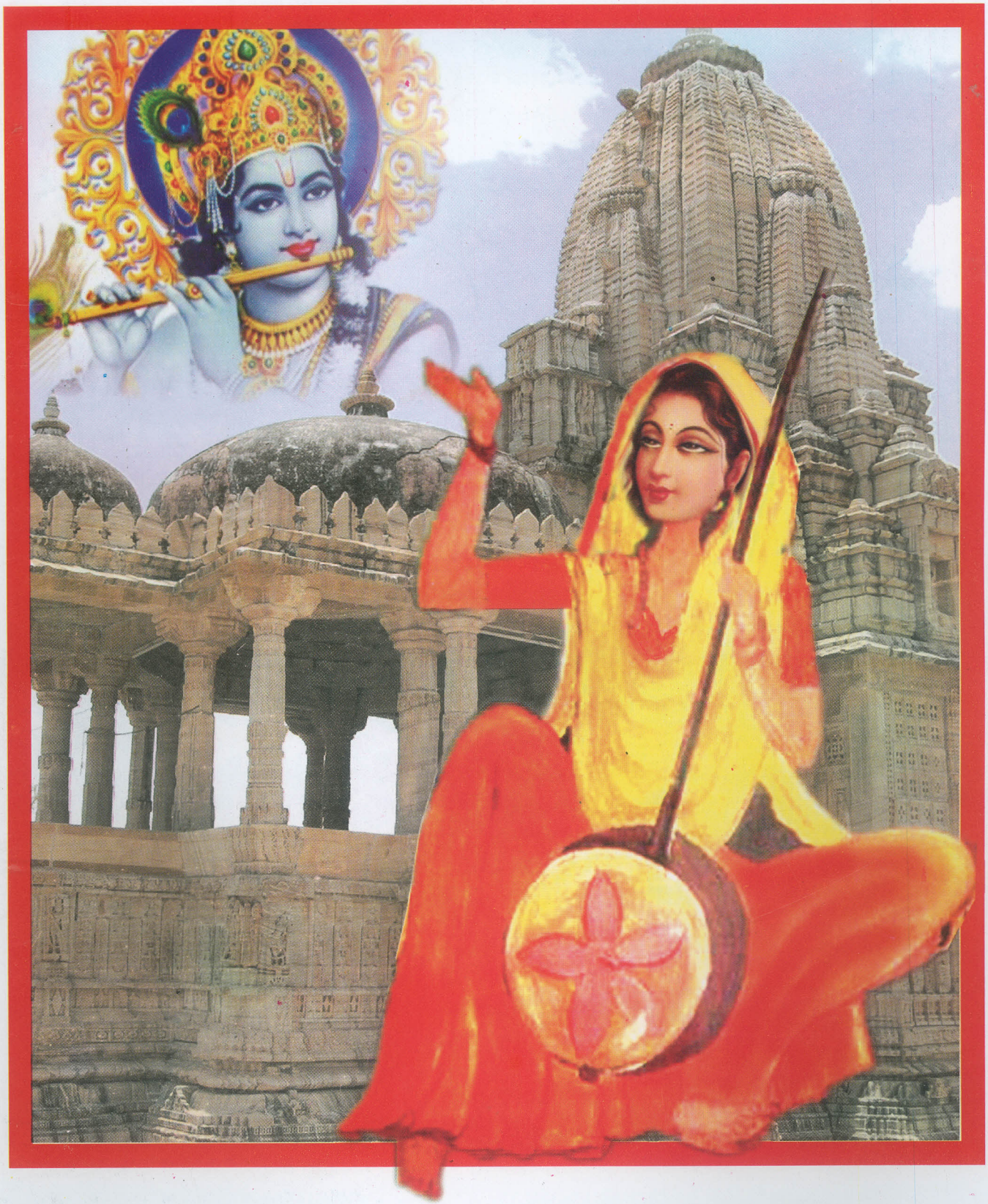

मीरा का जीवन और युग

1

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-21
मीरा का विशेष अध्ययन

खंड

1

मीरा का जीवन और युग

इकाई 1
मीरा का जीवन परिचय 5

इकाई 2
मीरा और उनका युग 19

इकाई 3
गुजरात के लोक जीवन में मीरा 34

इकाई 4
परिवार में मीरा 44

इकाई 5
भक्ति आंदोलन में मीरा का महत्व 57

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें 68

विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

(स्वर्गीय) प्रो. कमला प्रसाद

प्रो. चन्द्रकला पांडेय
कलकत्ता विश्वविद्यालय
कोलकाता

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
कोचीन विज्ञान एवं तकनीकी
विश्वविद्यालय, कोचीन

प्रो. नूरजहाँ बेगम
केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीतारानी पालीवाल (सेवानिवृत्त)
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. विमल थोरात (सेवानिवृत्त)
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संकल्पना
प्रो. रामबक्ष
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. अरविन्द तेजावत जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	1, 4
डॉ. जीवन सिंह 1/14 अरावली विहार, अलवर (राजस्थान)	2
प्रो. रंजना अरगड़े गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद	3
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	5

पाठ्यक्रम संपादक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

खंड संपादक
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी

सहयोग
सुश्री रेखा कुर्रे, आर.टी.ए.
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग
सुश्री हेमलता देवी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आवरण
अरविन्दर चावला

मुद्रण निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

नवम्बर, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6818-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्तं विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002

पाठ्यक्रम परिचय

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। भक्तिकाल में अनेक संत, कवि और समाज-सुधारक हुए हैं। न केवल हिन्दी भाषी प्रांतों में वरन् दक्षिण भारत में भी भक्ति की परंपरा ने अनेक रचनाकारों को जन्म दिया। भक्तिकाल को समझने के लिए उसका इस दृष्टि से अध्ययन भी किया जाना चाहिए कि उस काल में स्त्री की सर्जनात्मकता किस रूप में अभिव्यक्त हुई है। मीरा इस सर्जनात्मकता का प्रतीक है।

भक्तिकाल की दार्शनिक वैचारिक पृष्ठभूमि के बिना हिन्दी में मीरा का जन्म लेना संभव नहीं था इसलिए मीरा को समझने के लिए तत्कालीन भक्ति आंदोलन, राजनैतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ, मीरा का जीवन आदि अनेक बातों की जानकारी होना आवश्यक है। इस पाठ्यक्रम में हम मीरा की सर्जनात्मकता के साथ-साथ मध्ययुग में लिखे गए साहित्य के स्वरूप पर भी विस्तार से चर्चा करेंगे।

भक्ति आंदोलन नारी को भी घर से उसी तरह बाहर आने का निमन्त्रण देता था जिस प्रकार पुरुष को। भक्ति की दृष्टि में नारी और पुरुष में कोई अन्तर नहीं। दोनों अंशी के अंश हैं। लेकिन सामंती व्यवस्था नारी को विशेषतः उच्च वर्ग की नारी को घर से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं दे सकती थी। मीरा के भक्तजीवन का यही मूल भौतिक संघर्ष था। वह यदि निम्नवर्ग में जन्मी होतीं तो उनके बाहर निकलने पर रूढ़िग्रस्त समाज इतना कुपित और क्षुब्ध न होता। वह आंदोलन कैसा था, जो राणाकुल की स्त्री को बाहर निकलने और अपनी बात कहने की हिम्मत देता था। ऐसे युग में मीरा ने अपनी कविता में स्त्री की आवाज़ को बुलंद किया। जब स्त्री को घर में और पर्दे में कैद करके रखा जाता था उस समय मीरा ने अपने व्यक्तित्व की पहचान पर बल दिया, स्त्री पुरुष समानता की धारणा सामने रखी और अपने जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया। ये सारी बातें आधुनिक जीवन में प्रस्थान बिन्दु हैं और इसका प्रारंभ मीरा के साहित्य से माना जा सकता है। हम यह भी कह सकते हैं कि भारत में आधुनिकता की प्रारंभिक शुरूआत मीरा और कबीर की रचनाओं से हुई, न कि अंग्रेजी प्रभाव से। इस तरह मीरा का अध्ययन केवल मीरा के बारे में जानकारी प्राप्त करना नहीं है वरन् समानता पर आधारित समाज की स्थापना के लिए किए गए प्रयत्नों का एक हिस्सा भर है। मीरा का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी है, इस वाक्य को समझने के लिए मीरा को संपूर्णता में अपने परिवेश के साथ समझने की आवश्यकता है।

हम इस पाठ्यक्रम के माध्यम से मीरा को समग्र रूप से समझने का प्रयास करेंगे। हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ्यक्रम के द्वारा आप अपने देश, देश की संस्कृति और साहित्य को बेहतर ढंग से समझ पाएँगे।

खंड परिचय

यह खंड "मीरा का विशेष अध्ययन" पाठ्यक्रम का प्रथम खंड है। इस खंड में पाँच इकाइयाँ हैं जिनमें मीरा के जीवन, उनके परिवार एवं उनके समय के सामाजिक ढाँचे की जानकारी दी गई है। मीरा के साहित्य को पूरी तरह से जानने-समझने के लिए हमें सर्वप्रथम उस सामाजिक ढाँचे को समझना भी आवश्यक है जिसमें समाज के विविध समुदाय, वर्ग एवं जातियाँ एक साथ रहती आई हैं। मीरा ने अपने परिवेश से विद्रोह किया तथा उसे स्त्री समाज के अनुकूल करने के लिए नवीन मार्ग की तलाश की। मीरा ने (राजस्थान के) बाहर भी भ्रमण किया और वहाँ के इतिहास में अपना एक स्थान भी निर्धारित किया। इस खंड में हमने प्रयास किया है कि मीरा के साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व मीरा की कविता की आधारभूमि आपके लिए तैयार हो सके।

खंड की पहली इकाइ **"मीरा का जीवन परिचय"** है। इस इकाई में हमने उपलब्ध स्रोत सामग्री एवं मीरा से संबंधित शोधों के आधार पर मीरा के बचपन की आरंभिक जानकारियाँ दी हैं। चित्तौड़ में मीरा के जीवन-संघर्ष का परिचय देने के साथ-साथ, मीरा के जीवन से संबद्ध किंवदंतियों एवं जनश्रुतियों के निहितार्थ को स्पष्ट करने का भी प्रयत्न इकाई में किया गया है।

दूसरी इकाई **"मीरा और उनका युग"** है। इस इकाई में मीरा के समय की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है तथा उस समय के सामाजिक स्वरूप को विश्लेषित किया गया है। इस इकाई में मीरा के युग के दार्शनिक आधारों तथा साहित्य-संगीत की भी जानकारी दी गई है।

खंड की तीसरी इकाई **"गुजरात में मीरा"** है। इस इकाई में मीरा के गुजरात प्रवास एवं उस समय की गुजराती भक्त कवयित्रियों की जानकारी दी गई है। मीरा अपने गुजरात प्रवास में अनेक भक्त कवियों से मिलीं। उन कवियों के साथ मीरा के संबंध को भी इस इकाई में विवेचित किया गया है। गुजरात के लोक-मानस में मीरा का आज क्या स्थान है, इसका विश्लेषण भी इस इकाई में किया गया है।

खंड की चौथी इकाई **"परिवार में मीरा"** है। इस इकाई में महाराणा मेवाड़ एवं उनकी पारिवारिक मान्यताओं/परंपराओं के साथ-साथ महाराणा परिवार में मीरा की हैसियत की चर्चा की गई है जिससे यह स्पष्ट होगा कि ऐसी कौन सी शक्तियाँ थीं, जिनके आधार पर मीरा प्रतिरोध करने का साहस कर सकी। इस इकाई में मेड़तियों एवं हाड़ों की प्रतिस्पर्द्धा एवं मीरा की भूमिका को भी स्पष्ट किया गया है। इस इकाई में उन कारणों की भी जानकारी दी गई है जिनकी वजह से मीरा को चित्तौड़ दुर्ग छोड़ना पड़ा।

खंड की पाँचवीं एवं अंतिम इकाई **"भक्ति आंदोलन में मीरा का महत्व"** है। इस इकाई में भक्ति आंदोलन के उदय, भक्ति का स्वरूप, भक्ति आंदोलन के प्रेरक आचार्य एवं भक्ति आंदोलन की प्रमुख धाराओं की संक्षिप्त जानकारी दी गई है। साथ ही भक्ति आंदोलन में मीरा का स्थान भी निर्धारित किया गया है। भक्ति आंदोलन में भक्ति का स्वरूप कैसा था तथा मीरा की भक्ति कैसी थी, इसका विवेचन भी प्रस्तुत इकाई में किया गया है। इस प्रकार यह खंड यहीं सम्पन्न होता है।

इस खंड से संबंधित कुछ ऑडियो एवं वीडियो कार्यक्रम भी बनाए गए हैं। साथ ही खंड के अंत में कुछ उपयोगी पुस्तकों की सूची भी दी गई है। इन पुस्तकों का अध्ययन करके आप खंड में दिए गए विषयों पर अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभ कामनाओं के साथ !

इकाई 1 मीरा का जीवन परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 जीवन से संबंधित स्रोत सामग्री

1.3 इतिहास के आलोक में मीरा का जीवन

1.4 मीरा का बचपन

1.5 चित्तौड़गढ़ में मीरा का जीवन

1.6 मीरा का दुर्ग त्यागना एवं द्वारिका प्रवास

1.7 भक्त मीरा – एक सशक्त मीरा

1.8 मीरा से संबंधित किंवदंतियाँ

1.9 सारांश

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मीरा के व्यक्तित्व एवं जीवन के संबंध में जान सकेंगे;
- मीरा के जीवन के अध्ययन के लिए हमारे पास उपलब्ध स्रोत सामग्री की विश्वसनीयता को जान सकेंगे;
- मीरा के जीवन की इतिहास सम्मत व्याख्या कर सकेंगे;
- मीरा के बचपन से संबंधित आरंभिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- चित्तौड़ दुर्ग में मीरा के जीवन संघर्ष का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ मीरा तथा महाराणा परिवार के मध्य संघर्ष के कारणों को समझ सकेंगे;
- मीरा के जीवन से संबंधित लोक में प्रचलित किंवदंतियों से परिचित हो सकेंगे एवं उनके निहितार्थ समझ सकेंगे; और
- मीरा के सामाजिक-सांस्कृतिक अवदान से परिचित हो सकेंगे एवं आज के युग में मीरा के महत्व को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

साहित्यिक संदर्भों में बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में महिला मुक्ति के स्वर प्रखरता से उभरने लगे थे। प्रत्येक आंदोलन प्रेरणा स्रोत के रूप में इतिहास से अपने संदर्भ ग्रहण करता है। भारत का स्त्री-मुक्ति आंदोलन भी इसका अपवाद नहीं है। मीरा का जीवन एवं

व्यक्तित्व कुछ ऐसा रहा है कि वह सामंतवादी–ब्राह्मणवादी मूल्यों के विरुद्ध प्रतिरोध एवं संघर्ष की दास्तान है। ऐसी स्थिति में समकालीन स्त्री स्वरों का मीरा से प्रेरणा लेना स्वाभाविक है। आज हम मीरा के जिस जीवन चरित्र का अध्ययन करते हैं वह मीरा चित्तौड़ की युवरानी मीरा, जिसने राणाशाही के खिलाफ मोर्चा लिया था, न होकर, बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों के आलोचकों द्वारा गढ़ ली गई मीरा है, जिस पर विक्टोरियन शुचितावाद का मुलम्मा चढ़ा हुआ है।

मीरा की यह निर्मित छवि हमारे सामने एक ऐसी मीरा की तस्वीर पेश करती है जिसका कृष्ण प्रेम किसी बृहत् उद्देश्य से अभिप्रेरित न होकर मात्र व्यक्तिगत मानसिकता का परिणाम था। इस छवि में मीरा एक 'आदर्श भारतीय नारी' के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत की गई है जिसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य कृष्ण के ख्वाबों-खयालों में खोए रहना है। परंतु चित्तौड़गढ़ की मीरा के जीवन चरित्र की व्याख्या केवल इतनी ही नहीं थी वरन् इससे अधिक विस्तृत थी। मीरा के लिए भक्ति साधन थी साध्य नहीं। कृष्ण भक्ति का उपयोग मीरा ने सामंतवादी–ब्राह्मणवादी बेड़ियों की विस्तृत शृंखला को तोड़ने में किया एवं स्त्री मुक्ति की नई राहें तलाश कीं।

मीरा का जीवन केवल इसलिए अध्ययन योग्य नहीं हो सकता कि उसने कृष्ण से प्रेम किया था वरन् मीरा का व्यक्तित्व इसलिए भी आकर्षक है कि उसने एक ऐसे वातावरण एवं समाज में स्त्री मुक्ति के स्वरों को आवाज दी थी जो सती प्रथा जैसी अनेक कुरीतियों से ग्रस्त था। मीरा ने स्त्री के अधिकारों को सीमित करने वाले सामंती मूल्यों के विरुद्ध आवाज उठाई एवं अपने जीवन को ऐसे रूढ़िवादी प्रगतिहीन मूल्यों के प्रति विद्रोह का पर्याय बना डाला।

1.2 जीवन से संबंधित स्रोत सामग्री

हम देखते हैं कि मीरा जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के जीवन के संबंध में स्रोत सामग्री का लगभग अभाव पाया जाता है। अतः हमारे पास जो स्रोत सामग्री उपलब्ध है, उसी के आधार पर हम मीरा के जीवन पर विचार करेंगे।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य पर दृष्टि डालें तो उसमें भक्तमालों का विशिष्ट स्थान है। भक्तमाल मूलतः युगीन भक्तों के परिचयात्मक विवरण हुआ करते थे जिनमें भक्तों के संक्षिप्त विवरण समाहित होते थे। चूँकि लोक में मीरा की ख्याति कृष्ण भक्त के रूप में थी अतः इन भक्तमालों में मीरा का विवरण एक भक्त के रूप में मिलता है। नाभादास, प्रियादास, वैष्णवदास एवं राघौदास जैसे भक्तों द्वारा लिखित भक्तमालों में मीरा का उल्लेख है। ब्रह्मदास द्वारा लिखित भक्तमाल में मीरा के विषपान की घटना का उल्लेख है परंतु यहाँ मीरा के स्थान पर पमेल नामक भक्त स्त्री का उल्लेख है जिसकी साम्यता मीरा से स्थापित की जाती है। नाभादास के भक्तमाल का रचनाकाल 17वीं सदी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इसमें मीरा के संबंध में लिखा गया है कि :

सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलि जुगहिं दिखायो।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो।
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो।
भक्ति निसान बजाय के काहूं ते नाहिन लजी।
लोकलाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी।

इस प्रकार नाभादास की नज़र में मीरा 'निरअंकुश अति निडर' थी जिसने 'भक्ति निसान बजाय कैं, काहूं ते नाहिन लजी।' मीरा ने 'लोकलाज कुल शृंखला' त्याग कर कृष्ण भक्ति का आह्वान किया। प्रियादास की 'भक्तमाल' की टीका 'भक्तिरस बोधिनी' में मीरा का उल्लेख पाया जाता है। इसका रचना समय सम्वत् 1769 के आसपास माना जाता है। इस टीका में मीरा के विषपान की घटना, सम्राट अकबर एवं मीरा के भेंट का प्रसंग एवं द्वारिका में रणछोड़जी की मूर्ति में मीरा के विलीनीकरण की घटना का जिक्र है। ऐसा लगता है कि इस समय तक मीरा के साथ अनेक किंवदंतियाँ जुड़ चुकी थीं एवं मीरा के साथ अनेक चमत्कारिक घटनाओं का ताना-बाना बुना जाने लगा था। वैष्णवदास, प्रियादास के पौत्र थे जिन्होंने 'भक्त रस बोधिनी टीका' का भावार्थ दिया है जिसे प्रियादास ने लिखा था। अतः मीरा के संबंध में वे घटनाएँ जिनका उल्लेख प्रियादास की रचना में मिलता है एक बार पुनः वैष्णवदास की रचना में भी मिल जाता है। राघौदास कृत भक्तमाल का रचना समय सम्वत् 1717 के आस-पास माना जाता है। इसके अध्ययन से अनुमान होता है कि यह भक्तमाल नाभादास के भक्तमाल पर आधारित है तथापि स्रोत सामग्री के रूप में इस भक्तमाल का भी विशिष्ट स्थान है।

भक्तमालों के अतिरिक्त वार्ता साहित्य में मीरा का उल्लेख पाया जाता है। वार्ता साहित्य के रचनाकार भक्तमालों के रचनाकारों के समान भक्त थे। अतः उनकी चिंता का विषय भी मीरा की भक्ति एवं उसका स्वरूप ही था। प्रसंगवश ध्यान रहे कि वार्ता साहित्य मूलतः गद्य ग्रंथ है। 'चौरासी वैष्णवन् की वार्ता' एक ऐसा ही वार्ता ग्रंथ है जिसका संबंध वल्लभ संप्रदाय से है। इस ग्रंथ से ऐसा अनुमान होता है कि वल्लभ संप्रदाय मीरा एवं उसकी भक्ति के स्वरूप को नापसंद करता था। 'चौरासी वैष्णवन् की वार्ता' में मीरा से संबंधित तीन प्रसंग पाए जाते हैं जो इस प्रकार हैं – गोविंद दुबे साचोरा बाह्मण तिनकी वार्ता, पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता एवं कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता। वल्लभ संप्रदाय से ही संबंधित एक अन्य ग्रंथ 'दो सौ बावन वैष्णवन् की वार्ता' में भी मीरा का उल्लेख पाया जाता है। यहाँ मीरा का उल्लेख बाल विधवा 'अजब कुंवरि तिनकी वार्ता' के प्रसंग में है। यह वार्ता ग्रंथ अपने पूर्ववर्ती वार्ताग्रंथों की अपेक्षा मीरा के प्रति कम कटु है। ऐसा अनुमान होता है कि इस समय तक मीरा को पर्याप्त लोक-स्वीकृति मिल चुकी थी।

मध्यकालीन राजपूताने में ख्यात ग्रंथ लिखने की परंपरा विद्यमान थी। ये ख्यात ग्रंथ राज-परिवारों की प्रशंसा में लिखे गए ग्रंथ थे। मीरा के कुछ अध्येताओं का दावा है कि 'मुहता नौणसी री ख्यात' में मीरा का उल्लेख पाया गया है। यह वर्णन 'सीसोदियों की ख्यात' के अंतर्गत मिलता है। ख्यात ग्रंथों से मीरा के बारे में सीधे-सीधे भले ही कोई विस्तृत जानकारी न मिले परंतु मीरा के परिवार के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ अवश्य प्राप्त हो जाती हैं।

भक्तमाल, वार्ता ग्रंथ एवं ख्यात साहित्य के अतिरिक्त नागरीदास के नागर समुच्चय एवं सुखसारण द्वारा रचित मीराबाई की परची में मीरा का विस्तृत विवरण दिया गया है। नागरीदास का वास्तविक नाम सावंत सिंह था जो किशनगढ़ नरेश राज सिंह का ज्येष्ठ पुत्र एवं राजस्थानी व ब्रज भाषा का अच्छा ज्ञाता था। सुखसारण का संबंध रामस्नेही संप्रदाय से था। इसने 215 पदों में मीरा का जीवन चरित्र इंगित किया है। इन दोनों ही रचनाकारों के ग्रंथों में मीरा से संबंधित उन तमाम घटनाओं का उल्लेख मिलता है जो वर्तमान में किंवदंतियाँ बन चुकी हैं। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध की रचनाएँ होकर भी मीरा के अध्ययन में ये कृतियाँ विशिष्ट भूमिका निभाती हैं।

लिखित स्रोत सामग्री वस्तुनिष्ठता के कारण संदेह के घेरे में रहती है जब कि पुरातात्विक स्रोत सामग्री अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होती है। दुर्भाग्यवश मीरा के आलोचकों

ने पुरातात्विक स्रोत सामग्री का बेहद सीमित उपयोग किया है। वर्तमान समय में मीरा के जीवन से संबंधित जो नए शोध प्रकाश में आ रहे हैं उनमें पुरातात्विक स्रोत सामग्री का भी उपयोग हुआ है जो एक अच्छा लक्षण है। इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों में मीरा के नाम पर प्रचलित पदों की पाण्डुलिपियाँ बिखरी पड़ी है। ये पाण्डुलिपियाँ मीरा से संबंधित महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री उपलब्ध कराती तो हैं परंतु उनका संग्रहण एवं प्रकाशन अभी ठीक से नहीं हो पाया है।

1.3 इतिहास के आलोक में मीरा का जीवन

किंवदंतियों, भक्तमालों, वार्ता-साहित्य एवं भक्तों के मीरा संबंधी विवरणों पर आश्रित मीरा का जीवन क्या इतिहास सम्मत है? भक्तों ने मीरा का जो विवरण दिया है, वह साधारण जानकारी पर आधारित है जो लोक के माध्यम से उन तक पहुँची थी। भक्तों का उद्देश्य न तो मीरा अथवा महाराणा परिवार का इतिहास लिखना था एवं न ही वे चित्तौड़ दुर्ग एवं उसकी राजनीतिक गतिविधियों के निकट संपर्क में थे। चूँकि मीरा एक स्त्री थी एवं इतिहास लेखन की राजनीति हमेशा से ही कुछ ऐसी रही है कि वह इतिहास में महिलाओं के योगदान को भुलाता रहा है अतः किसी भी परवर्ती इतिहास ग्रंथ में मीरा का कहीं कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। मीरा एक विद्रोहिणी थी एवं उसने महाराणा परिवार की झूठी मर्यादा को तोड़ा था अतः मेवाड़ की राजसत्ता को यह कभी स्वीकार्य नहीं रहा कि मीरा का कहीं कोई उल्लेख हो। यही वजह है कि मीरा के अध्येता के पास मीरा से संबंधित स्रोत सामग्री का लगभग अभाव है। तथापि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर हम मीरा के जीवन का अनुमान कर सकते हैं जो इतिहास सम्मत भी हो। अत्यंत संक्षेप में मीरा का जीवन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है –

"मीरा का बचपन मारवाड़ के मेड़ता प्रदेश में बीता एवं उसका लालन-पालन मेड़ता के शासक राव दूदा के संरक्षण में हुआ। बचपन से ही मीरा तीक्ष्ण बुद्धि एवं समझबूझ वाली बालिका थी जो राव दूदा के साथ स्थानीय राजनीति को नजदीक से देख रही थी। मीरा से प्रभावित होकर एवं राजनीतिक हित को ध्यान में रखकर महाराणा सांगा ने मीरा को अपने ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोज की पत्नी बनाने का निश्चय किया। मीरा मेवाड़ की युवरानी बनी परंतु शीघ्र ही उसे वैधव्य का कष्ट भोगना पड़ा। इस बीच महाराणा महल में युवरानी के रूप में मीरा की हैसियत यथावत बनी रही। मीरा ने अपना शेष जीवन मेवाड़ की जनता के लिए समर्पित करने का निश्चय किया। उसने पारिवारिक मर्यादाओं को ताक पर रखकर जनसंपर्क का निश्चय किया। मीरा का यह व्यवहार महाराणा परिवार को पसंद नहीं आया एवं महाराणा परिवार मीरा को लेकर सशंकित होने लगा। मीरा ने महाराणा के प्रतिबंध को अस्वीकार कर महल की दीवारों का अतिक्रमण किया एवं मेवाड़ की जनता के लिए तथा एक स्त्री के रूप में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष आरंभ किया। इस हेतु मीरा ने भक्ति रूपी साधन का चुनाव किया, जिसके माध्यम से वह अपने संघर्ष को धार दे सकती थी। मीरा के इस विद्रोही रूप ने महाराणा परिवार को मीरा के विरुद्ध कर दिया। आगे मीरा के लिए ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं कि उसका चित्तौड़ दुर्ग में अधिक समय तक रुकना असंभव हो गया एवं मीरा ने दुर्ग छोड़ने का निश्चय किया। वह मेड़ता एवं उसके बाद वृंदावन गई। वृंदावन से लौटकर वह द्वारिका आई एवं अपना शेष जीवन द्वारिका में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। इसी बीच मेवाड़ का राजनीतिक घटनाक्रम तेजी से बदला एवं मेवाड़ की सत्ता पर महाराणा उदयसिंह का अधिकार हुआ। उदयसिंह ने मीरा को पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह किया परंतु मीरा ने अज्ञातवास चले जाना ही उचित समझा।"

1.4 मीरा का बचपन

भक्तमालों एवं वार्ता साहित्य में मीरा का जो थोड़ा बहुत परिचय दिया गया है उससे मीरा के बचपन पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। अतः मीरा के बचपन के संबंध में जानने के लिए हमें बहुत कुछ किंवदंतियों का सहारा लेना पड़ता है। ऐतिहासिक विवरणों एवं परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर यह तो स्थापित है कि मीरा मेड़ता के संस्थापक राव दूदा की पौत्री एवं रतनसिंह की पुत्री थी। मीरा के पिता रतनसिंह खानवा के युद्ध में मारे गए थे। अनुमान होता है कि मीरा की माँ का बचपन में ही देहांत हो गया था। अतः उसकी परवरिश उसके दादा राव दूदा के संरक्षण में हुई। राव दूदा के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे विष्णु के एक लोकरूप चारभुजानाथ के परम भक्त थे। दादा के संरक्षण में परवरिश के कारण बहुत कुछ संभव है कि राव दूदा के व्यक्तित्व का मीरा पर भी कुछ प्रभाव रहा हो। विशेष तौर पर मीरा को दरबारी गतिविधियों एवं राजनीति की समझ अवश्य रही होगी। दूदा की भक्ति का असर भी मीरा पर अवश्य रहा होगा परंतु यह आश्चर्यजनक है कि जहाँ राव दूदा चारभुजानाथ के भक्त थे वहीं मीरा कृष्ण की भक्त थी। वैसे भी कृष्ण की भक्ति एवं चरित्र मीरा के विद्रोही मन के लिए अधिक उपयुक्त था। मीरा-काव्य के विद्रोही स्वर भी कृष्ण भक्ति के अधिक उपयुक्त है।

मीरा का जन्म मारवाड़ के मेड़ता प्रदेश में हुआ था, परंतु जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। कुड़की, मेड़ता, बाजोली से लेकर मारवाड़ एवं मेवाड़ के कई गाँवों के नाम मीरा के जन्मस्थल के तौर पर प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि मीरा का जन्म मारवाड़ के किसी गाँव में न होकर मेवाड़ के ही किसी गाँव में हुआ था जहाँ पर मीरा का ननिहाल था। मीरा के जन्म स्थान से जुड़े अनेक शोध कार्यों के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भले ही मीरा का ठीक-ठीक जन्म स्थान बताना कठिन हो परंतु इसमें कोई मतभेद नहीं है कि मीरा का जन्म एवं बचपन मारवाड़ के मेड़ता प्रदेश में ही बीता एवं उसकी परवरिश भी वहीं हुई। वैसे भी मीरा के अध्येता के लिए उसके जन्म स्थान के नाम से अधिक उसके कृतित्व का महत्व है।

मारवाड़ एवं मेवाड़ में प्रचलित अनेक किंवदंतियों के माध्यम से मीरा के बारे में कई सूचनाएँ प्राप्त होती हैं यद्यपि इन सूचनाओं पर साक्ष्यों के अभाव में हमेशा संदेह बना रहता है। किंवदंतियों में मीरा के बारे में कहा गया है कि वह बचपन से ही कृष्ण को अपना पति समझने लगी थी परंतु ऐसा अनुमान होता है कि मीरा ने बचपन से नहीं वरन् अपने पति कुंवर भोजराज की मृत्यु के पश्चात् ही कृष्ण को अपना पति स्वीकार किया। कुंवर भोज की मृत्यु के पश्चात् जब मीरा को सती किया जाने लगा तो उसने कृष्ण को अपना पति घोषित करते हुए कहा कि वह कृष्ण की वैधानिक पत्नी है न कि किसी मेवाड़ कुंवर की विधवा।

मीरा के काव्य के अध्ययन एवं मीरा के जीवन से संबंधित घटनाओं का गहन अध्ययन करने के पश्चात् इसमें किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं रह जाता कि राजकुमारी मीरा चतुर एवं तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त थी। वह मेड़ता के शासक राव दूदा की प्रिय पौत्री थी एवं कदाचित बेहद सुंदर थी। इन्हीं सब कारणों से महाराणा सांगा ने मीरा को अपने ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोज के उपयुक्त समझा एवं उसे बहू के रूप में स्वीकार किया। मीरा बचपन से अध्ययनशील राजकुमारी एवं साहित्यिक रुचि से संपन्न थी। यही वजह थी कि बाद में जाकर मीरा की यह रुचि मीरा-काव्य के सृजन एवं निर्माण में सहायक सिद्ध हुई।

सारांश रूप में मीरा के बचपन के संबंध में बहुत कुछ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वह बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि एवं सुंदर कन्या थी जिसके परिणामस्वरूप अपने दादा राव दूदा की प्रिय थी। मीरा के इन गुणों से प्रभावित होकर मेवाड़ के शासक महाराणा सांगा ने उसे बहू स्वीकार किया एवं मीरा ने मेवाड़ राजपरिवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया परंतु पति भोज की मृत्यु ने मीरा के सामने संकट उत्पन्न कर दिया जिसका मीरा ने पूरे साहस के साथ मुकाबला किया। मीरा ने कृष्ण को अपना पति बताया एवं सती होने से इंकार किया। इस प्रकार मीरा की कृष्ण भक्ति उसके बचपन की श्रद्धा का परिणाम न होकर परवर्ती समय की ज़रूरत अधिक थी। मीरा के बचपन को हमें इसी रूप में लेना चाहिए जिसके समर्थन में अनेक परिस्थितिजन्य साक्ष्य उपस्थित किए जा सकते हैं।

1.5 चित्तौड़गढ़ में मीरा का जीवन

अमीर खुसरो ने चित्तौड़ के किले का भव्य वर्णन किया है। किले के भीतर अनेक मंदिर एवं महल हैं जो मध्यकालीन राजपूत स्थापत्य के सर्वश्रेष्ठ नमूने प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः चित्तौड़ का दुर्ग प्रत्येक प्रकार से एक विकसित मध्यकालीन शहर का उदाहरण था। किले के भीतर देश के अनेक भागों एवं इस्लामिक जगत से अनेक व्यापारी एवं प्रतिभाशाली लोग व्यापार के इरादे से प्रवेश पाते थे एवं पुनः लौट जाते थे। विभिन्न संप्रदाय एवं मत-मतांतरों के योगी, साधु, भक्त इत्यादि समय-समय पर किले में प्रवेश करते रहते थे एवं कुछ दिनों के प्रवास के पश्चात् पुनः लौट जाते थे। यह अनुमान किया जा सकता है कि चित्तौड़ प्रवास के दौरान मीरा का संपर्क अनेक व्यापारियों, भक्तों एवं संतों से होता रहा होगा एवं देश-विदेश की घटनाओं से मीरा रू-ब-रू होती रही होगी। चित्तौड़ किले के जिन महलों में मीरा रहती थी उनका निर्माण महाराणा कुंभा ने करवाया था। अतः दुर्ग में ये महल कुंभा के महल के नाम से जाने जाते हैं। ये महल उदयपुर के संस्थापक महाराणा उदयसिंह के जन्म, पन्नाधाय द्वारा उदयसिंह को बचाने के लिए अपने पुत्र का बलिदान, मीरा द्वारा कृष्ण की आराधना, महाराणा विक्रमादित्य द्वारा मीरा को विषपान करवाना इत्यादि घटनाओं के साक्षी रहे हैं। दुर्ग में मीरा का जीवन इसी प्रकार की राजनीतिक घटनाओं, षड्यंत्रों और कुचक्रों के इर्द-गिर्द घूमता रहा होगा। यह बेहद आश्चर्यजनक लगता है कि मीरा ने राजनीतिक कुचक्रों एवं षड्यंत्रों की क्षण-क्षण आशंका वाले इस दुर्ग में रहना क्यों स्वीकार किया जबकि उसके पास मेवाड़ के अन्य अनेक दुर्गों में से किसी एक दुर्ग में रहने के विकल्प मौजूद थे। मीरा चाहती तो किसी अन्य दुर्ग में रहकर न केवल अपनी कृष्ण भक्ति बिना किसी व्यवधान के जारी रख सकती थी वरन् वह स्वयं भी दरबारी षड्यंत्रों व कुचक्रों से दूर रह सकती थी। महाराणा विक्रमादित्य एवं बनवीर यह नहीं चाहता था कि मीरा चित्तौड़ दुर्ग में रुकी रहे, फिर ऐसी क्या वजह थी कि अनेक प्रताड़नाओं के बावजूद मीरा ने चित्तौड़ दुर्ग में टिके रहना पसंद किया।

शायद, चित्तौड़ दुर्ग में टिके रहना न केवल मीरा वरन् मेड़तिया राठौड़ों की भी राजनीतिक ज़रूरत थी। मीरा द्वारा चित्तौड़ दुर्ग छोड़ देने का अर्थ था बनवीर एवं महाराणा विक्रमादित्य को दुर्ग के भीतर एवं बाहर पूरी मनमानी करने का अवसर प्रदान करना। अतः राजनीतिक समझबूझ यही कहती थी कि मीरा चित्तौड़ न छोड़े एवं महाराणा निरंकुश न हो। मेड़तिया राठौड़ भी ऐसा ही चाहते थे ताकि वे मीरा के माध्यम से मेवाड़ राजमहल में अपनी उपस्थिति एवं हस्तक्षेप सुनिश्चित कर सकें। इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि भक्ति के अलावा भी चित्तौड़ दुर्ग में मीरा के अन्य हित निहित थे। वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियों की भी यही माँग थी कि मेवाड़ की सत्ता किसी कुशल प्रशासक एवं योग्य हाथों में रहे। मीरा के विपरीत महाराणा विक्रमादित्य अपरिपक्व एवं राजनीतिक

सूझबूझ से विहीन व्यक्ति था। महाराणा का ऐसा व्यक्तित्व मेवाड़ के सामंतों के लिए निराशा का विषय था एवं मेड़तिया राठौड़ भी इसके अपवाद न थे।

वल्लभ संप्रदाय से संबंधित ग्रंथों यथा 'चौरासी वैष्णवन् की वार्ता' एवं 'दो सौ बावन वैष्णवन् की वार्ता' में मीरा की आलोचना की गई है, इससे अनुमान होता है कि मीरा ने कदाचित वल्लभ संप्रदाय में अपनी आस्था प्रकट करने से इंकार कर दिया हो अथवा संभव है कि मेवाड़ के महाराणा के भय के कारण ग्रंथकारों ने ऐसा किया हो। मीरा की भक्ति का स्वरूप आज भी विद्वानों के लिए बहस का विषय बना हुआ है। चित्तौड़ दुर्ग का सर्वेक्षण करने पर हमें दुर्ग में अनेक मंदिरों, शिवालयों एवं मठों के मध्यकालीन अवशेष प्राप्त हो जाएँगे। इन खंडित मंदिरों, शिवालयों एवं मठों के अलावा हमें अनेक जैन मंदिर भी दुर्ग में मिलते हैं। दुर्ग में शाक्त, शैव, जैन एवं वैष्णव प्रत्येक संप्रदाय से संबंधित धर्म स्थल हमें मिल जाएँगे। निश्चित रूप से इन समस्त संप्रदायों एवं इनके अनुयायियों से मीरा का निकट संपर्क था अतः इन समस्त संप्रदायों की विचारधारा का थोड़ा बहुत प्रभाव मीरा पर ज़रूर रहा होगा। यही वजह है कि अनेक प्रयासों के बावजूद विद्वान मीरा को किसी संप्रदाय विशेष से जोड़ने में असफल रहे हैं। अंततः सत्य यही है कि अनेक मतों एवं संप्रदायों के प्रभाव के बावजूद मीरा का संबंध किसी भी संप्रदाय से नहीं था।

लोक में मीरा से संबंधित ऐसी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जो चित्तौड़ दुर्ग में मीरा के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। मीरा की कविता का अध्ययन करने पर यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि मीरा की कविता में परंपरा का विरोध एवं सामंती मूल्यों के प्रति असंतोष है। निश्चय ही चित्तौड़ दुर्ग में मीरा का जीवन इन्हीं सामंती मूल्यों के प्रतिरोध एवं परंपरा विरोध की कहानी है। लोक में मीरा से संबंधित ऐसी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जिनमें रूढ़ि परंपराओं के प्रति मीरा के विरोध को देखा जा सकता है। किंवदंती है कि एक अवसर पर मीरा ने दुर्ग स्थित देवी के मंदिर में देवी की पूजा से इंकार कर दिया था जबकि महाराणा के परिवार में ऐसा परंपरागत रूप से हो रहा था कि शादी के पश्चात् नवविवाहिता को देवी की पूजा करना अनिवार्य है। मीरा के इस विरोध के कारण महाराणा ने मीरा को अनेक अवसरों पर प्रताड़ित करना चाहा। एक किंवदंती यह भी है कि महाराणा के आदेश की अवहेलना करने पर मीरा को तहखाने में कैद कर लिया गया था। चित्तौड़ दुर्ग में इन तहखानों को आज भी देखा जा सकता है। मीरा के विषपान की घटना भी प्रसिद्ध है। यह भी कहा जाता है कि महाराणा के आदेश से मीरा के शयन कक्ष में विषैले जीव जंतुओं को छोड़ दिया गया था। वास्तव में मीरा के प्रति महाराणा का यह व्यवहार उसके परंपरा विरोध एवं प्रतिरोध की प्रवृत्ति का ही परिणाम था। सच तो यह है कि चित्तौड़ दुर्ग में मीरा का पूरा जीवन झूठी मान्यताओं, अमानवीय रूढ़ियों एवं सामंती मूल्यों के प्रतिरोध में बीता। मीरा द्वारा कुल मर्यादा त्यागकर नाचना एवं गाना भी इसी परंपरा एवं रूढ़ि विरोध का परिणाम था। मीरा के चित्तौड़ दुर्ग के जीवन को मीरा के निम्नलिखित पद के माध्यम से समझा जा सकता है :

पगे घुंघरु बांधि मीरां नाची रे।
मैं सपने तो नारायण की हो गई, आपहि दासी रे।।
लोग कहै, मीरा भई बाबरी, न्यात कहै कुल-नासी रे।।
विष का प्याला राणा जी ने भेज्या, पीवत मीरां हाँसी रे।।.
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणां की दासी रे।।

1.6 मीरा का दुर्ग त्यागना एवं द्वारिका प्रवास

मीरा के परंपरा विरोध एवं प्रतिरोधी चरित्र वाले व्यक्तित्व ने मेवाड़ के महाराणा को उसका विरोधी बना दिया था परंतु मेड़तियों के प्रतिरोध के भय से महाराणा मीरा के प्रति कोई

अप्रिय कदम उठाने से डरता था। मेवाड़ के सत्ता समीकरण में मेड़तियों का भय मीरा को कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान करता था।

दुर्भाग्य से इसी बीच मारवाड़ के शासक राव मालदेव ने मेड़ता पर आक्रमण कर दिया एवं मारवाड़ में मेड़ता के स्वतंत्र अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया। मालदेव के इस आक्रमण ने मेड़तियों की शक्ति को समाप्त कर दिया जिसके परिणामस्वरूप मेवाड़ की राजनीति में उनका अनावश्यक हस्तक्षेप भी समाप्त हो गया। अब मीरा के लिए चित्तौड़ दुर्ग में अधिक समय तक रहना सुरक्षित न था। अतः मीरा ने चित्तौड़ दुर्ग के त्याग का निर्णय लिया। कहा जाता है कि दुर्ग त्यागने के पश्चात् मीरा ने मेड़ता की तरफ प्रस्थान किया परंतु मेड़ता पर राव मालदेव के आक्रमण एवं मेड़ता नगर के पतन की सूचना पाकर मीरा ने पुनः लौटने का निश्चय किया। प्रचलित मत के अनुसार यहाँ से लौटकर मीरा वृंदावन गई जहाँ उसकी जीव गोस्वामी से भेंट हुई। मीरा को वृंदावन का वातावरण अरुचिकर लगा एवं वह द्वारिका की ओर चल पड़ी। चित्तौड़ दुर्ग में मीरा का मुकाबला सामंतवाद से था तो वृंदावन में उसका पाला रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद से पड़ा। अपने चरित्र के अनुरूप मीरा ने यहाँ भी रूढ़ियों का विरोध किया जिसे संभवतः वृंदावन के ब्राह्मणों को पसंद नहीं आया होगा। ऐसी स्थिति में मीरा के लिए अधिक समय तक यहाँ रुकना संभव न था।

द्वारिका में मीरा ठीक-ठीक कहाँ रुकी इस संबंध में विवाद है। द्वारिका में रणछोड़दासजी अथवा कृष्ण के दो मंदिर हैं। एक मंदिर समुद्र के बीच में टापू पर बसे गाँव में स्थित है तो दूसरा मुख्य कस्बे में जो समुद्र तट पर बसा है। दोनों ही मंदिरों के पंडों का दावा है कि मीरा ने अपना शेष जीवन उनके द्वारा कथित मंदिरों में बिताया। मीरा ने किस मंदिर में तथा किस रूप में अपना द्वारिका प्रवास पूर्ण किया, पाँच सौ वर्षों पश्चात् इस संबंध में कुछ भी निश्चित रूप से कहना तो मुश्किल है परंतु मीरा के द्वारिका प्रवास को लेकर किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं है।

मध्यकाल में मेवाड़ एवं गुजरात की निकटता सर्वविदित है। यह नैकट्य भाषा, रहन-सहन एवं पहनावे से लेकर संस्कृति के अन्य आयामों तक विस्तृत था। मेवाड़ के अनेक भागों में गुजराती में लिखे मध्यकालीन शिलालेख आसानी से ढूँढ़े जा सकते हैं तो वहीं दूसरी ओर मेवाड़ी एवं गुजराती भाषा में ऐसे अनेक शब्द एवं मुहावरे मिल जाएँगे जो दोनों ही भाषाओं की साझी विरासत हैं। द्वारिका में वर्तमान समय में कम से कम तीन मध्यकालीन मंदिरों के अवशेष पाए जाते हैं – द्वारिका नगर में स्थित द्वारिकाधीश का एवं रुक्मणी का मंदिर तथा टापू पर पर स्थित, जिसे भेंट द्वारिका कहा जाता है, का द्वारिकाधीश मंदिर। इन तीनों ही मंदिरों की स्थापत्य कला मध्यकालीन राजपूत स्थापत्य का सुंदर नमूना प्रस्तुत करती है। इनके स्थापत्य पर चित्तौड़गढ़ की कला का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समझा जा सकता है कि द्वारिका ही एक ऐसा स्थान था जहाँ मीरा को वृंदावन की तरह अजनबियत का अहसास नहीं होता होगा, अतः मीरा ने शेष जीवन यहीं पर बिताने का निश्चय किया।

मेवाड़ एवं गुजरात के राजनीतिक संबंध कुछ इस प्रकार के थे कि मीरा का गुजरात रुकना एक सुरक्षित विकल्प था एवं इसका एक विशिष्ट राजनीतिक महत्व भी था। महाराणा सांगा के समय गुजरात का सुल्तान मेवाड़ की सेना से परास्त हो चुका था। अतः मेवाड़ व गुजरात की शत्रुता सर्वविदित थी। मेवाड़ की सेना के लिए गुजरात में अनधिकार प्रवेश संभव न था। यही वजह थी कि मीरा यहाँ सुरक्षित थी। मीरा के द्वारिका रहने का दूसरा लाभ यह था कि यहाँ रहकर मीरा मेवाड़ के निकट संपर्क में रह सकती थी। मीरा मेवाड़ के लोगों का दुःख एवं दशा जान सकती थी। सारांश रूप में कहा जाए तो मीरा का द्वारिका में रुकना केवल कृष्ण प्रेम का नतीजा नहीं वरन् इससे भी कुछ अधिक था। यहाँ रहकर मीरा मेवाड़ एवं मेवाड़ की जनता से जुड़ी रह सकती थी।

द्वारिका में मीरा के प्रसंग में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। किंवदंती है कि महाराणा उदयसिंह ने मीरा को पुनः चित्तौड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए कुछ पुरोहितों एवं सामंतों को द्वारिका भेजा। पुरोहित एवं सामंत मीरा को मेवाड़ लौट आने के लिए तो नहीं मना सके परंतु मेवाड़ की लौटती हुई राजपूती सेना को द्वारिका क्षेत्र की एक स्थानीय जनजाति के प्रतिरोध का सामना अवश्य करना पड़ा। इन लोगों ने मेवाड़ की लौटती हुई सेना पर हमला बोला जो मीरा के प्रति उनके प्रेम का प्रमाण था। केवल इसी एक घटना से द्वारिका में मीरा की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि द्वारिका क्षेत्र की यह जनजाति परवर्ती समय में लूट-पाट का काम करने लगी। उनमें से कुछ समुद्री लुटेरों के साथ मिल कर लूटपाट करने लगे। मेवाड़ के सामंतों एवं पुराहितों ने तो मेवाड़ लौटकर यही बताया कि मीरा द्वारिकाधीश की मूर्ति में विलीन हो गई परंतु कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि मीरा अपने अनुयायियों के सहयोग से किसी अज्ञातवास के लिए प्रस्थान कर गई हो।

1.7 भक्त मीरा – एक सशक्त मीरा

आज मीरा का जो जीवनवृत्त उपलब्ध है, वह किंवदंतियों, भक्तों के मीरा संबंधी विवरण एवं लोक विश्वासों का मिला-जुला परिणाम है। भक्त, समाज का हिस्सा थे, अतः मीरा की जो छवि तत्कालीन जनमानस में व्याप्त थी, वही छवि भक्तों के मानस पटल पर भी अंकित थी। भक्तों का मीरा से परिचय एक भक्त के रूप में था। चित्तौड़ दुर्ग एवं महाराणा परिवार के आंतरिक शक्ति संघर्ष से ये भक्त सर्वथा अनभिज्ञ थे। भक्तों ने मीरा को एक भक्त के रूप में स्वीकार किया एवं उसी रूप में इन भक्तों ने अपने द्वारा रचित भक्तमालों में मीरा का विवरण एवं परिचय भी दिया। महाराणा मेवाड़ के परिवार से मीरा ऐसी पहली युवरानी नहीं थी जिसे तत्कालीन भक्त समाज ने एक भक्त के रूप में स्वीकार किया हो। महाराणा मेवाड़ परिवार में ही मीरा से पूर्ववर्ती झाली रानी की प्रतिष्ठा भी भक्तों के मध्य एक भक्त के रूप में थी। नाभादास के भक्तमाल का वह छप्पय जिसमें महिला भक्त कवयित्रियों का उल्लेख है, में झाली रानी का भी उल्लेख मिलता है –

सीता, झाली, सुमति, शोभा प्रभुता, उमा, भटियाणी
गंगा, गौरी, कुंवरि उबीठा, गोपाली गणेश दे रानी
कला, लखा, कृतगढ़ौ, मानमती, शुचि, सतिभामा
यमुना, कोली, रामा, मृगा, देवा, दे भक्तन विश्रामा
जुगजेवा, कीकी, कमला, देवकी, हीरा, हरिचेरी पोषे भगत
कलियुग युवतीजन भक्त राज महिमा जब जानै जगत।

मेवाड़ के महाराणा कुंभा एक शासक के साथ-साथ एकलिंगनाथ के भक्त के रूप में भी प्रसिद्ध थे। मेवाड़ की जनता एक शासक के साथ-साथ उन्हें भक्त के रूप में भी स्वीकार करती थी। मीरा के दादा राव दूदा चारभुजानाथ के परम भक्त माने जाते थे। अतः भक्तों के मध्य युवरानी मीरा को भक्त माना जाना विशेष आश्चर्य की बात नहीं थी किंतु इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि एक भक्त के अलावा मीरा का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। भक्तों के मध्य मीरा की छवि भले ही एक भक्त के रूप में रही हो परंतु यह भी सत्य है कि तत्कालीन महाराणा परिवार में चलने वाले शक्ति संघर्ष में मीरा अवश्य ही एक शक्ति ध्रुव थी। भक्त के रूप में मीरा की छवि मीरा को लोकप्रियता एवं जनस्वीकृति प्रदान कर रही थी। ध्यान रहे कि भक्ति मीरा के लिए साधन थी, साध्य नहीं। भक्ति के माध्यम से मीरा न केवल सती प्रथा जैसी अनेक कुरीतियों के विरुद्ध प्रतिरोधी भूमिका ग्रहण कर सकती थी वरन् इसके माध्यम से वह जनस्वीकृति एवं लोकप्रियता प्राप्त कर प्रतिरोध को और अधिक सशक्त बना रही थी।

भक्तों के मध्य मीरा भक्त थी तो चित्तौड़ दुर्ग के भीतर मीरा की छवि मेड़तणी के रूप में थी। मेड़तणी अर्थात् मेड़तिया राठौड़ों की बेटी। अतः नवयुवक महाराणा मीरा को अपना राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी मानता था क्योंकि महाराणा विक्रमादित्य हाड़ाओं का भांजा था जो कि राठौड़ों के प्रतिद्वंद्वी थे। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखें तो मीरा ने ऐसे अनेक कार्य किए जो परंपरा विरुद्ध थे। मीरा ने न केवल महाराणा परिवार की तमाम परंपराओं को तोड़ा वरन् उनके खिलाफ खुला विद्रोह भी किया। मीरा ने महाराणा महल की परिधि का अतिक्रमण किया एवं आम जनता से सीधा संपर्क स्थापित किया। कृष्ण भक्ति के आवेग में वह कभी-कभी नृत्य आरंभ कर देती थी जैसा कि उस समय के अनेक भक्त कवि किया करते थे। मीरा एक स्त्री थी एवं महाराणा परिवार की पुत्रवधू भी, अतः आम जनता के लिए जहाँ यह सब आश्चर्य का विषय था वहीं मीरा की सास हाड़ी रानी के लिए यह कुल कलंक था। वैसे भी हाड़ाओं एवं मेड़तियों में राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता तो विद्यमान थी ही अतः मीरा एवं हाड़ी रानी के मध्य व्याप्त कटुता और अधिक तीव्र हो गई।

मीरा द्वारा घुंघरू बांध कर नाचना एवं गाना गाना जनता के लिए बेहद आश्चर्य का विषय था अतः लोग मीरा को सनकी मानने लगे। आत्म साक्ष्य के लिए मीरा का पद उद्धृत करें तो मीरा ने कहा भी है –

पगे घुंघरु बांधि मीरा नाची रे।
मैं तो सपने नारायण की, हो गई आपहि दासी रे।।
लोग कहै, मीरा भई बावरी सास कहै कुल-नासी रे।।

अर्थात् लोग उसे बावरी या सनकी समझने लगे। वस्तुस्थिति यह थी कि परंपरा के अतिक्रमण से मीरा लोक के अधिक निकट संपर्क में आई एवं उसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ने लगी। यही मीरा की शक्ति थी जिस पर मीरा ने भक्ति का सुंदर मुलम्मा भी चढ़ा दिया था। भक्तों के मध्य मीरा भक्त थी तो लोक उसे बावरी बहूरानी समझ रहा था। चित्तौड़ दुर्ग में मीरा मेड़तणी थी तो स्त्री समाज, मीरा में मुक्ति मार्ग का सूत्र ढूँढ़ रहा था। मीरा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ के सत्ता प्रतिष्ठान ने भी उसे भक्त स्वीकार कर लिया था क्योंकि अब मेवाड़ की सत्ता के लिए मीरा की भक्त के रूप में लोकप्रियता कोई खतरे का विषय नहीं थी। भक्तमालों, वार्ता साहित्य एवं अन्य भक्त कवियों द्वारा मीरा के संबंध में दिए गए विवरणों ने इस भ्रम को और अधिक पुष्ट किया। वास्तविकता यह है कि मीरा भक्त से ज्यादा सामाजिक परिवर्तन की अग्रदूत एवं जननायक थी जिससे मेवाड़ के सत्ता प्रतिष्ठान को खतरा महसूस होने लगा था। इतिहास दृष्टि का आलम्बन ग्रहण करें तो प्रचलित एवं प्रचारित मीरा का जीवन अपूर्ण नजर आता है एवं ऐसा महसूस होता है कि मीरा का वास्तविक जीवन इससे कुछ अधिक था।

1.8 मीरा से संबंधित किंवदंतियाँ

वैसे तो समस्त भक्त कवियों के साथ किंवदंतियाँ किसी न किसी रूप में जुड़ी हुई हैं परंतु मीरा के चरित्र निर्माण में किंवदंतियों की जो महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है वैसी भूमिका शायद ही किसी अन्य भक्त कवि के संबंध में देखी जा सकती है। किंवदंतियों का अपना विशिष्ट समाजशास्त्र है जो लोकमत के प्रतिबिंबन का व्यापक कार्य करता है। वस्तुतः मीरा के जीवन चरित्र को समझने के लिए मीरा के संबंध में प्रचलित किंवदंतियों का ज्ञान आवश्यक है। मीरा के संबंध में मेवाड़, मारवाड़ एवं गुजरात क्षेत्र में जो अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं वे मीरा के प्रति लोक की गहरी आस्था का प्रमाण है। मीरा के जीवन से संबंधित किंवदंतियों का ज्ञान हमें मीरा को लोक की दृष्टि में समझने में मदद करता है।

ऐसी मान्यता है कि मीरा की हत्या के उद्देश्य से महाराणा ने विजयवर्गीय बनिये के हाथों विष का प्याला मीरा को पिलाने के लिए भेजा था परंतु मीरा के विष पीने के बावजूद उस विष का मीरा पर कोई असर नहीं हुआ। राजपूताने में बनियों की एक शाखा विजयवर्गीय कहलाती है। आज भी विजयवर्गीय लोग मीरा की उपासना एवं मीरा मंदिर का निर्माण करवाते हैं। मान्यता यह है कि ऐसा मीरा की हत्या के प्रयास के कारण निर्मित श्राप से मुक्ति हेतु किया जाता है। मेवाड़ के महाराणा ने मीरा को विष पीने के लिए भेजा या नहीं इस बात की पुष्टि आज इतने वर्षों पश्चात् सप्रमाण करना तो मुश्किल है परंतु मीरा के मंदिर के निर्माण की जो परंपरा विजयवर्गीय ब्राह्मणों में विद्यमान है वह इस ओर संकेत अवश्य करती है कि ऐसी किसी घटना का अस्तित्व अवश्य रहा होगा।

चित्तौड़ दुर्ग में जहाँ पर मीरा का मंदिर स्थित है उसके ठीक बाहर किसी निर्गुणपंथी साधु का समाधिस्थल है। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि यह समाधि मीरा के गुरु रैदास की है। रैदास मध्यकाल में एक प्रसिद्ध भक्त कवि हुए हैं जिनका संबंध दलित जाति से था। जातिप्रथा के संबंध में मीरा के प्रगतिशील विचारों पर यद्यपि किसी को कोई संदेह नहीं है परंतु रैदास एवं मीरा के समय एवं जीवन काल के अंतर को देखते हुए ऐसा संभव नहीं लगता कि रैदास मीरा के गुरु रहे होंगे। ठीक इसी प्रकार मीरा एवं भक्त कवि तुलसीदास में परस्पर पत्र व्यवहार की चर्चा मिलती है। मीरा एवं तुलसी के समय एवं जीवनकाल में भी व्यापक अंतर मिलता है अतः ऐसे किसी पत्र व्यवहार की वास्तविकता पर संदेह होना स्वाभाविक है। मीरा व तुलसीदास के परस्पर पत्र-व्यवहार के प्रमाण में तुलसी का जो पद उद्धृत किया जाता है वह इस प्रकार है–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितनि भये मुद मंगलकारी।।
नातो नेह राम को मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंधन कहा आँखि जेहि फूटे बहु तक कहौं कहाँ लौं।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो बढ़े सनेह रामपद ऐसो मतो हमारो।।

मीरा के प्रति मेवाड़ की जनता के मन में अपार श्रद्धा थी एवं अनेक लोग उसमें चमत्कारिक देवी के दर्शन करने लगे थे अतः विभिन्न चमत्कारिक घटनाओं का मीरा के साथ जुड़ना स्वाभाविक था। ऐसी अनेक चमत्कारिक घटनाओं के क्रम में मीरा को मार्ग में शेर का मिलना एवं शेर द्वारा मीरा को प्रणाम करके पुनः लौट जाना, मीरा को महाराणा द्वारा महल के तहखाने में बंदी बनाना एवं कई दिन बीतने पर भी मीरा का जीवित बचे रहना, मीरा द्वारा कृष्ण से प्रत्यक्ष बातचीत करना एवं अन्य लोगों द्वारा इसे आश्चर्य के रूप में लेना आदि अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। मीरा के साथ घटित इन घटनाओं में चमत्कार के जुड़ जाने से ये घटनाएँ असत्य प्रतीत होती हैं किंतु विचार का विषय यह होना चाहिए कि क्या मीरा के साथ इन चमत्कारिक घटनाओं का जुड़ना मीरा की व्यापक लोक-स्वीकृति का प्रमाण है? इससे यह भी आभास मिलता है कि तत्कालिक महाराणा मेवाड़ की जनता के मध्य पर्याप्त अलोकप्रिय हो चुका था एवं मेवाड़ की जनता उसे नापसंद करती थी। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि मीरा एवं मेवाड़ के महाराणा के परस्पर संबंध कटु हो चुके थे।

एक किंवदंती इस प्रकार है कि चित्तौड़ दुर्ग में किसी अवसर पर मीरा को चित्तौड़ के किले में स्थित देवी की पूजा-अर्चना करनी थी परंतु मीरा ने यह कहते हुए देवी की पूजा से

इनकार कर दिया कि वह केवल कृष्ण के प्रति श्रद्धा रखती है एवं कृष्ण के अलावा किसी अन्य देवी या देवता की पूजा उसे स्वीकार्य नहीं। मीरा का कृष्ण प्रेम सर्वविदित है। मीरा के समय कृष्ण पूजा का प्रचलन चित्तौड़ से अधिक चित्तौड़ दुर्ग के बाहर था। मीरा के जीवन पर नजर डालें तो उसके अनेक कृत्य जनता के प्रति मीरा के प्रेम को प्रमाणित करते हैं। ऐसे में यदि मीरा ने कृष्ण पूजा पर जोर देकर देवी पूजा से इनकार किया हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि नाथपंथ से लेकर अनेक वैष्णव संप्रदायों तक राजपूताने के अनेक धर्म संप्रदाय अपना संबंध मीरा से स्थापित करने का प्रयास करते हैं किंतु विद्वान आज तक इस बात पर एकमत नहीं हैं कि मीरा का संबंध प्रामाणिक तौर से किस पंथ या संप्रदाय से था। अंततः अधिक विश्वसनीय यही लगता है कि मीरा भक्ति के मामले में पंथनिरपेक्ष थी। भक्ति मीरा के लिए व्यक्तिगत आस्था का मामला था किसी पंथ का संप्रदाय से संबंध का कारण नहीं।

मीरा के संबंध में शुचितावादियों को जो बात सर्वाधिक परेशान करती है वह है मीरा का विधवा होकर भी कृष्ण को अपने पति के रूप में स्वीकार करना। ऐसी अनेक किंवदंतियाँ मिल जाएँगी जहाँ यह प्रचारित करने का प्रयास दिखाई देता है कि मीरा ने बचपन में ही कृष्ण से स्वप्न में शादी कर ली थी एवं उसके पश्चात् मीरा ने कृष्ण को ही अपना पति मान लिया था अथवा यह कि मीरा व मीरा के पति कुंवर भोज के मध्य शादी से पहले ही यह समझौता हो गया था कि वे आपस में किसी भी प्रकार का कोई शारीरिक संबंध नहीं रखेंगे। किंवदंती यह भी है कि मीरा एवं कुंवर भोज के शादी के फेरों के समय मीरा ने फेरों के दौरान दोनों के मध्य कृष्ण मूर्ति को रखकर मूलतः कृष्ण से ही विवाह किया न कि कुंवर से। गौर से देखने पर ऐसी समस्त किंवदंतियों का एक ही आधार है, एवं वह आधार है – शुचिता का अनावश्यक आग्रह। कभी-कभी झूठी मर्यादा में बँधे हुए मानवों के लिए यह स्वीकार्य नहीं होता कि एक विधवा स्त्री किसी अन्य पुरुष के साथ भी संबंध रखे, एवं यह स्वीकार्यता भी एक ऐसी विशिष्ट स्त्री के संबंध में जिसे न केवल व्यापक लोक स्वीकृति प्राप्त है वरन् जनता का विश्वास, प्यार एवं स्नेह भी। अतः शुचिता के अनावश्यक आग्रहों से ग्रसित ऐसी अनेक किंवदंतियों को हमें इसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए।

मेवाड़ के तरफ मालवा एवं गुजरात इन दो मुस्लिम राज्यों का अस्तित्व था। किंवदंती है कि मीरा की कृष्ण भक्ति की चर्चा सुनकर सारंगपुर के नवाब ने मीरा को देखने एवं उससे मिलने का निश्चय किया। चित्तौड़ दुर्ग में नवाब भेष बदल कर आया एवं मीरा का भजन व नृत्य देखने के पश्चात् जब वह अपने राज्य लौटने लगा तब पता चला कि वह सारंगपुर का नवाब था। एक कहानी अकबर एवं बीरबल के संबंध में भी प्रसिद्ध है। कहानी इस प्रकार है कि वृंदावन प्रवास के दौरान स्वयं अकबर एवं बीरबल भेष बदलकर मीरा से मिलने आए थे। अकबर एवं मीरा के समय एवं काल के व्यापक अंतर को देखते हुए यह कहानी असत्य प्रतीत होती है। मीरा एवं जीव गोस्वामी की भेंट का उल्लेख कर देना भी प्रासंगिक होगा। जीव गोस्वामी ने मीरा को मिलने से इनकार कर दिया था, उनका कहना था कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते। जीव गोस्वामी का संबंध भक्ति की जिस शाखा से था वहाँ ईश्वर को पुरुष एवं प्रकृति को माया अथवा स्त्री माना जाता है। मीरा ने प्रत्युत्तर में कहा कि उसे यह जानकर दुःख हुआ कि वृंदावन में उस परम पुरुष के अलावा भी कोई अन्य मानव पुरुष होने का दावा करता है। मीरा के इस बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर से गोस्वामी लज्जित हुए एवं तत्पश्चात् वे स्वयं उठकर मीरा से मिलने के लिए आए। इस प्रसंग से मीरा की चतुरता एवं बुद्धिमानी का तो आभास होता ही है साथ ही यह भी पता चलता है कि मीरा को शास्त्र ज्ञान भी था एवं वो दर्शन की गूढ़ बातें समझती थी।

मीरा की मृत्यु आज तक रहस्य बनी हुई है। कहा जाता है कि मीरा जब गुजरात स्थित द्वारिका में अपना जीवन व्यतीत कर रही थी उन्हीं दिनों मेवाड़ में अकाल पड़ा। मेवाड़

के नए महाराणा को उसके कुलदेवता ने स्वप्न में कहा कि अकाल का कारण मीरा को महाराणा परिवार द्वारा पूर्व में दी गई प्रताड़नाएँ हैं। इस स्वप्न के पश्चात् नए महाराणा ने मीरा को गुजरात से पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए मेवाड़ के कुछ सामंतों एवं पुरोहितों को द्वारिका भेजा। मीरा ने लौटने से इनकार कर दिया एवं वहीं कृष्ण की मूर्ति में कथित रूप से विलीन हो गई। महाराणा मेवाड़ को स्वप्न आने अथवा नहीं आने पर संदेह किया जा सकता है परंतु मीरा के लौटने के राजनीतिक लाभ अवश्य थे। मीरा के मेवाड़ लौटने से मेवाड़ राज्य के मेड़तिया राठौड़ों से पूर्व में बिगड़ चुके संबंध निश्चय ही सुधर जाते। मेड़तिया राठौड़ों से महाराणा के संबंध बिगड़ने की एक वजह निश्चित रूप से मीरा का मेवाड़ से निष्कासन भी था। मीरा के द्वारिकाधीश की मूर्ति में विलीनीकरण की घटना की पूर्णरूपेण असत्य है। उल्लेखनीय बात यह है कि इसके पश्चात् मीरा अथवा उसके जीवन से संबंधित किसी घटना या किंवदंती का अस्तित्व नहीं मिलता। हाँ यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस घटना के पश्चात् मीरा अज्ञातवास चली गई। इस संबंध में विभिन्न आलोचकों द्वारा जो-जो अनुमान लगाए गए हैं, वे इस प्रकार हैं – मीरा को महाराणा के प्रतिनिधियों ने मौत के घाट उतार दिया ताकि भविष्य में महाराणा मीरा की चुनौती से मुक्त हो सके, मीरा ने मंदिर के पीछे स्थित समुद्र में कूदकर आत्महत्या कर ली, दक्षिण भारत के मठों एवं मंदिरों में मीरा के नाम पर प्राप्त पदों के आधार पर कुछ आलोचकों का अनुमान है कि वो दक्षिण भारत चली गई तो कुछ शोधों में अनुमान लगाया गया है कि मंदिरों से गायब होकर मीरा गुजरात की स्थानीय जनजातियों में विलीन हो गई। वजह चाहे जो भी हो परंतु इतना तो निश्चित है कि इस घटना के पश्चात् मीरा के जीवन का कोई प्रामाणिक साक्ष्य किंवदंती के रूप में भी हमारे पास उपलब्ध नहीं है। यद्यपि द्वारिका से लौटती हुई मेवाड़ की सेना पर गुजरात की एक स्थानीय जनजाति बघेर द्वारा आक्रमण करने का किंवदंती के रूप में साक्ष्य अवश्य मिलता है।

1.9 सारांश

मीरा के प्रथम प्रकाशित जीवनचरित से लेकर वर्तमान समय तक मीरा से संबंधित जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें से अधिकांश पुस्तकों में मीरा के जीवन चरित्र के अंकन का आधार किंवदंतियाँ रही हैं। परवर्ती पुस्तकों ने पूर्ववर्ती पुस्तकों से संदर्भ ग्रहण किए एवं मीरा का चरित्र निरूपण ठीक उसी प्रकार कर दिया जिस प्रकार का जीवन चरित्र उन्होंने पूर्ववर्ती पुस्तकों में पाया था। इस प्रकार प्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव में मीरा के आलोचकों को यह खुली छूट मिल गई कि वे जैसा चाहते वैसा ही मीरा का चरित्र निर्माण कर सकते थे। परिणाम यह हुआ कि एक आलोचक की नजर में एक भक्त स्त्री का जैसा चरित्र होना चाहिए वैसा ही चरित्र उन्होंने मीरा का भी निर्मित कर दिया। मीरा पर आरंभिक पुस्तकें बीसवीं सदी की शुरूआत में लिखी गई थी। यह वह समय था जब राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियाँ भाग तो लेने लगी थीं परंतु तत्कालीन चिंतनधारा के प्रभाव में वे स्त्री को पुरुष की अनुगामिनी ही समझते थे। स्त्री के विद्रोही स्वरूप एवं चरित्र की कल्पना इन आलोचकों द्वारा संभव नहीं थी। अतः मीरा के चरित्र लेखकों ने मीरा को प्रायः एक कृष्ण भक्त के रूप में कल्पित कर दिया ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अन्य मध्यकालीन भक्त कवि थे। इस प्रक्रिया में वे एक स्त्री के रूप में मीरा के संघर्ष से साक्षात्कार नहीं कर सके एवं उन्होंने मीरा के व्यक्तित्व को अन्य पुरुष भक्त कवियों के ठीक समानांतर मान लिया। मीरा के जीवन की व्याख्या तब तक अधूरी है जब तक कि चित्तौड़ दुर्ग से लेकर वृंदावन एवं द्वारिका तक मीरा के संघर्ष की व्याख्या नहीं की जाती। एक अकेली स्त्री द्वारा सामाजिक कुरीतियों से लोहा लेना एवं आम जनता में उसकी व्यापक स्वीकृति कोई कम आश्चर्य की बात नहीं थी। निश्चय ही मीरा के संघर्ष सदैव हमारे लिए प्रेरणास्पद बने रहेंगे।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. "कृष्ण भक्ति मीरा के लिए साधन थी न कि साध्य।" प्रस्तुत कथन के आलोक में मीरा की भक्ति के बारे में अपना मत व्यक्त कीजिए।

2. "बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में मीरा के आलोचकों ने मीरा का जो जीवन प्रस्तुत किया वह मीरा के वास्तविक जीवन से सर्वथा भिन्न है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? यदि हाँ, तो बताइए कि बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में प्रस्तुत मीरा का जीवन चरित्र मीरा के वास्तविक जीवन से किस प्रकार भिन्न था?

3. महाराणा परिवार से मीरा के संघर्ष के क्या कारण थे? क्या आपको नहीं लगता कि इस संघर्ष में मेवाड़ की प्रजा मीरा के साथ थी?

4. "आज हमारे पास मीरा के जीवन से संबंधित जो जानकारियाँ उपलब्ध हैं उनका आधार मुख्य रूप से किंवदंतियाँ ही हैं।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? यदि हाँ तो क्यों?

इकाई 2 मीरा और उनका युग

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मीरा का समय : सामाजिक आधारभूमि

- 2.2.1 सामन्ती समाज व्यवस्था
- 2.2.2 वर्ण-व्यवस्था और स्त्री-पुरुष संबंध
- 2.2.3 स्त्री-पराधीनता

2.3 मीरा का समय : आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

- 2.3.1 आर्थिक पृष्ठभूमि
- 2.3.2 राजनीतिक स्थिति
- 2.3.3 सांस्कृतिक वातावरण

2.4 मीरा का समय : दार्शनिक भावभूमि

2.5 मीरा का समय : साहित्य और संगीत

- 2.5.1 साहित्य
- 2.5.2 संगीत

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- मीरा के समय के सामाजिक स्वरूप को समझ सकेंगे;
- मीरा के समय की राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों को जान सकेंगे;
- मीरा के समय के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे;
- मीरा के समय में स्त्री-पुरुष संबंधों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- मीरा के समय के साहित्य-संगीत में मीरा के पक्ष को जान सकेंगे; और
- कुल मिलाकर मीरा और उनके युग से उनके संबंध को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति युग की कविता का महत्व, उसके द्वारा भक्तिभावना के माध्यम से लोकजागरण की चेतना फैलाने से है। इसलिए इस युग को लोकजागरण का युग भी कहा जाता है। वैसे यह समय सामन्ती व्यवस्था से बने समाजिक रिश्तों को उजागर करने वाला समय है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था और स्त्री की पराधीनता लगातार बढ़ती

गई है, लेकिन इस समय के संवेदनशील और जागरूक लोगों ने इन रिश्तों से उत्पन्न अन्तर्विरोधों को जानकर और उनके प्रति विद्रोह कर, उनको नया स्वरूप देने का प्रयास किया है। इसीलिए इस युग में कबीर का महत्व जहाँ वर्ण-व्यवस्था की अमानवीयता और विसंगतियों को उद्घाटित कर, प्रेम-संबंधों को स्थापित करने के क्रम में रहा है वहीं मीरा की कविता और उनके जीवन संघर्ष का महत्व, स्त्री पराधीनता को चुनौती देने से। मीरा का महत्व इसलिए भी है कि वे केवल कविता और शब्दों के स्तर पर ही विद्रोह नहीं करती, वरन् अपने जीवन-संघर्ष को ही कविता में रूपान्तरित कर देती हैं। इससे उनके काव्य में विश्वसनीयता, प्रामाणिकता, नैतिकता और ईमानदारी का जो आलोक फैला है, वह बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। बड़े रचनाकारों के जीवन-संघर्ष भी उतने ही बड़े होते हैं। तभी वे अपने समय तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि उससे आगे तक के युगों को प्रभावित करते हुए कालजयी रचनाकार की सूची में स्थान पाते हैं। मीरा ऐसी ही कवयित्री हैं, जो मध्यकालीन सीमाओं में रहते हुए भी आधुनिक जीवन के सवालों और जवाबों तक जा पहुँचती हैं। वे नारी-स्वाधीनता के प्रश्नों के लिए एक सुदृढ़ आधारभूमि प्रदान करती हैं और वर्तमान के लिए भी प्रासंगिक बन जाती हैं।

मीरा का जीवन और कविता दोनों ही अपने समय को एक नयी दिशा देने वाले हैं, जिसका निर्माण तत्कालीन जनपदीय राज्यों की भूमि पर हुआ है। इन जनपदीय राज्यों में मारवाड़ और मेवाड़ की सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के यथार्थ को जाने बिना हम मीरा के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के मर्म तक नहीं पहुँच सकते। इस यथार्थ से परिचित होकर ही हम मीरा के विद्रोह की वास्तविकता को जान सकते हैं। मीरा की समकालीनता भी अपने युग की सीमाओं का अतिक्रमण कर आगे निकल जाती है और वे मध्यकालीन समाज में नारी विद्रोह का प्रश्न उठाकर, भक्ति मार्ग को सामाजिक प्रश्नों के दायरे में ले आती हैं। यह काम केवल भक्ति-साधना से संभव नहीं था। इसके लिए जरूरी था उन सामन्ती रुढ़ियों के प्रति विद्रोह, जो समाज पर स्थापित पुरुष-वर्चस्व को चुनौती देता है। जो भी व्यक्ति इस तरह का महत्वपूर्ण कार्य करता है उसे मीरा की तरह कष्ट उठाने पड़ते हैं तथा सुख-सुविधाओं से वंचित होना पड़ता है। मीरा के जीवन में भी ऐसा हुआ, किन्तु इसी वजह से वे अपने युग की निर्मात्री रही और भावी समय के लिए भी नई जमीन तैयार कर सकीं। आगे हम इसी प्रस्तावना के भागों और उपभागों का अध्ययन करते हुए मीरा और उनके युग के मर्म को जानने-समझने का प्रयास करेंगे।

2.2 मीरा का समय : सामाजिक आधारभूमि

मीरा के समय की जानकारी के लिए सर्वप्रथम हमको उस समय के ढाँचे को समझना आवश्यक है, जिसमें समाज के विभिन्न समुदाय, वर्ग और जाति-सम्प्रदाय एक साथ रहते आए हैं। किसी बड़े और विविधतापूर्ण समाज के अध्ययन से हम उसके भीतर के आपसी संबंधों को जानते हैं। इस दृष्टि से मीरा के समय का भारतीय समाज कई सम्प्रदायों-मजहबों-खासतौर से हिन्दू-मुस्लिम समुदाय में बँटा हुआ ऐसा समाज है, जो भिन्नता के बावजूद एकता के सूत्र में भी बँधा हुआ है। इस समय यद्यपि केन्द्रीय शासन पर मुस्लिम आधिपत्य था किन्तु हिन्दुओं की भी उसमें पूरी भागीदारी और हिस्सेदारी थी। जहाँ तक सामाजिक एकता का सवाल है, वह हिन्दू समाज में अपेक्षाकृत कम रही है क्योंकि उसमें "जाति" को मुख्य आधार माना जाता रहा है। ये जातियाँ ऊँच-नीच की भावना और संस्कारों से ग्रस्त रही हैं। इस वजह से, एक समाज की जैसी ठोस ताकत बननी चाहिए, उसका हिन्दू समाज में अभाव रहा है। जातियों में विभक्त हिन्दू-समाज की अपनी एक बड़ी संस्कृति होने के बावजूद विभिन्न जातियों की अपनी-अपनी संस्कृतियों के निर्माण का रास्ता भी खुला रहा है। मीरा का जन्म चूँकि मारवाड़ के राजपूत समाज में हुआ था,

इसलिए इसी समाज के सांस्कृतिक परिवेश की छाप उनके मन पर पड़ी। इसमें उनकी विशेषता रही है कि उन्होंने परिवेश के प्रति बगावत कर उसको स्त्री-समाज के अनुकूल करने का एक नया मार्ग खोला। पुरुष-समाज के प्रभुत्व में जकड़ी स्त्री के जीवन का भी उसी तरह कोई स्वाधीन मार्ग हो सकता है, यह मीरा ने मरणांतक पीड़ा भोगकर, करके दिखलाया। इसी काम के लिए आज मीरा का समूचे संसार में सम्मान है। पूरे भक्ति-साहित्य की यह विशेषता रही है कि वह अपने समय के समाज के आंतरिक और बाहरी सच को पूरी शिद्दत के साथ व्यक्त करता है। इसमें मीरा की अपनी विशिष्ट भूमिका है।

2.2.1 सामन्ती समाज व्यवस्था

मीरा के समय की शासन व्यवस्था, अर्थतंत्र, समाज व्यवस्था आदि सभी का ढाँचा एवं स्वरूप सामंती था। इस से लोगों के बीच ऊँच-नीच की भावना बलवती थी। अधिकांश लोग कृषि-उत्पादन और पशुपालन पर निर्भर थे और इसी में से अपने शासकों को लगान और कर दिया करते थे। राज्यों की भूमि खलसा, हवाला, जागीर, भोग और सासण में विभाजित थी। कृषि लगान के अलावा अन्य सभी कमेरी और व्यावसायिक जातियों से तरह-तरह के कर लिए जाते थे। इस तरह जनता पर करों का भारी बोझ था और इससे सामान्य प्रजा की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। वर्ण-व्यवस्था की वजह से उच्चवर्गों के लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिन्हें सामान्य जनता ने अपनी नियति मानकर स्वीकार कर रखा था। किसान छोटे पैमाने की खेती करता था और कारीगरी के अन्य कार्य उससे अलग एवं स्वतंत्र होते थे।

सामन्ती समाज-व्यवस्था में खासतौर से दो वर्ग साफ तौर पर नज़र आते हैं, एक उच्च शासक-सामन्त वर्ग और दूसरा शासित निम्न प्रजा वर्ग। इस व्यवस्था में काम करने वाले कमेरे वर्ग को नीचा समझा जाता है और काम नहीं करने के बावजूद सत्ताभोगी अकर्मण्य वर्ग को उच्च वर्ग, जो सत्ता के अधिकार को प्राप्त करके अपनी इच्छा के अनुसार उसका संचालन करता है। उच्च वर्ग स्वयं काम नहीं करता, इसी आधार पर वह अपनी श्रेष्ठता को स्थापित करता है तथा काम न करने की जीवन प्रणाली को श्रेष्ठता की कसौटी बना देता है। इस आधार पर जो लोग मेहनत करते हैं और अपने हाथ से काम करते हैं, वे नीचे दर्जे के माने जाते हैं। ऊँच-नीच के भेद पर टिकी यह व्यवस्था, अन्त में लोगों का संस्कार बन जाती है, जो आसानी से टूटती नहीं। ऊँच-नीच का यह भेद केवल वर्गीय स्तर पर ही नहीं होता, वरन् इसके अनेक रूपों का एक जाल सा फैल जाता है। यहाँ तक कि एक ही वर्ग और परिवार में जो स्थान और अधिकार पुरुष को प्राप्त होते हैं, वे उसी वर्ग और परिवार की स्त्री को नहीं होते। जो धीरे-धीरे स्त्री का संस्कार बन जाते हैं और वह स्वयं ही अपने परिवार के पुरुषों की तुलना में, दूसरे दर्जे पर रहना स्वीकार करती जाती है। इतना ही नहीं, वह इस संस्कार को दृढ़तापूर्वक कायम रखने में पुरुष-सत्ता का सहयोग भी करती है। तभी तो हजारों वर्षों तक सामन्ती निज़ाम कायम रह पाता है। सामन्ती व्यवस्था में रहते हुए लोगों को यह समझा दिया जाता है कि ऊँच-नीच और विषमता की यह व्यवस्था ईश्वर के द्वारा बनाई हुई है। इस तरह सामन्ती व्यवस्था का अपना एक सुदृढ़ समाजतंत्र, शासन तंत्र, अर्थ तंत्र और संस्कृति तंत्र बन जाता है। मीरा के समय में ऐसा ही एक सुदृढ़ सामंती तंत्र था। जिससे मीरा को जूझना पड़ा था। यह सामंती तंत्र ही होता है, जिसमें नारी अपने सगे-संबंधियों की आधीनता में वैसे ही रहती है, जैसे दूसरे सेवक-चाकरों पर अनेक तरह की पाबंदियाँ होती हैं। इसमें जो आज़ादी पुरुष भोगता है वह स्त्री को प्राप्त नहीं होती। स्त्री के ऊपर अनेक तरह की बन्दिशें होती हैं। वह घर की चारदीवारी की बन्दिनी सी होकर रह जाती है।

2.2.2 वर्ण-व्यवस्था और स्त्री-पुरुष संबंध

प्राचीन भारतीय समाज की संरचना में वर्ण-व्यवस्था का केन्द्रीय स्थान रहा है। शंकराचार्य सरीखे अद्वैतवादी दार्शनिक भी वर्ण व्यवस्था को सही ठहराते थे, यद्यपि वे इस संसार को मिथ्या मानते थे। यह सामन्ती तंत्र की जकड़न ही कही जाएगी कि एक बड़े जीवन-सत्य की खोज करने में तत्पर दार्शनिक भी उसकी जटिलताओं में उलझने से नहीं बच सका। युग के अपने दबावों से वह भी मुक्त नहीं हो पाया। ऐसा दरअसल उस स्थिति में होता है जबकि समाज का एक छोटा-सा हिस्सा, स्वयं को शारीरिक श्रम की जिम्मेदारियों से मुक्त कर लेता है और यह हिस्सा दूसरों के द्वारा किए गए श्रम से अर्जित की गई अतिरिक्त सम्पत्ति का स्वामी बन जाता है। इससे "सिद्धांत" कुछ बन जाता है और "व्यवहार" उससे भिन्न हो जाता है। भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था का भी यही सच है कि यह श्रम-शून्य और श्रमसंलग्न वर्गों पर टिकी रही है। उपनिषद्कालीन भारत की इस बात को उसकी निर्णायक विशेषता कहा जाता है कि इस काल में ऐसे वर्ण-विभक्त समाज की स्थापना हुई, जिसमें क्षत्रिय अर्थात् राजा और सामन्त शासक थे और ब्राह्मण उनकी छत्रछाया में रहते थे। इससे पहले ब्राह्मण अकेले ही थे, उन्होंने अकेलेपन से मुक्त होने तथा समाज-वृद्धि के उद्देश्य से क्षत्रियों की रचना की और उसको श्रेष्ठता प्रदान की। आगे चलकर उसी प्रक्रिया में उस सामाजिक तंत्र का जन्म हुआ, जिसमें विभिन्न जातियों का निर्माण एक सोपान-क्रम में हुआ। इससे एक बात बहुत स्पष्ट है कि समाज के भीतर श्रम-विभाजन की प्रक्रिया से ही वर्ण और जाति-व्यवस्था जैसी एक जटिल सामाजिक संरचना का जाल फैला। इससे बुद्धि और कर्म का ऐसा विभेद उत्पन्न हुआ कि बुद्धि-वैभव और शारीरिक शक्ति पर टिका वर्ग उस वर्ग से स्वंतंत्र और शक्ति-सत्तासम्पन्न बनता चला गया, जो केवल शारीरिक श्रम पर निर्भर रहता था। उपनिषद्कालीन भारत में ही खेती और उद्योग-धन्धों से जुड़े समूह-समुदायों को नीची जातियों में स्थान दिया गया। जो आगे चलकर और सघन हुआ और आज तक अपना अस्तित्व बचाए हुए है। इस व्यवस्था को सबसे पहले मान्यता वेद के उस "पुरुषसूक्त" से मिली, जिसमें ब्राह्मण की उत्पत्ति "ब्रह्म" के मुख से, क्षत्रिय की भुजाओं से, वैश्व की जंघाओं से और शूद्र वर्ग की चरणों से बतलाई गई थी। चूँकि यह व्यवस्था वेद में की गई, इसलिए इसे भी अपौरुषेय - (ईश्वरीय) मान लिया गया और यहीं से धीरे-धीरे वंशानुगत होकर वर्ण-व्यवस्था से अपरिवर्तनशील जाति-व्यवस्था में बदल दिया गया। इनमें भी ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णों का कब्ज़ा, चूँकि अतिरिक्त उत्पादन पर होता था इसलिए उनमें समाज के प्रति स्वामी-भाव पैदा हुआ, जो अपनी सुविधाओं के अनुसार समाज का नीति-नियामक बनता चला गया। इसमें वर्णों और स्त्री-पुरुषों के बीच में एक सीमाबद्ध और कठोर कार्य-विभाजन कर उसे इतना "धर्म-संबंध" बना दिया गया कि किसी की मजाल कि उस तंत्र को कोई थोड़ा भी इधर-उधर कर सके। भारतीय सामाजिक तंत्र में इससे ठहराव और विभाजन का वातावरण पैदा हुआ, जिंससे समाज में भीतरी दुर्बलता को आने से रोका नहीं जा सकता था।

केवल वर्ण-व्यवस्था के आधार पर भारतीय सामाजिक संरचना को नहीं समझा जा सकता। इससे समाज के विभाजन को मोटे तौर पर ही समझा जा सकता है। इससे इसकी वास्तविक और सक्रिय इकाइयों को नहीं जाना जा सकता। यहाँ पर देखने की बात यह है कि जो अधिकार ऊँची जातियों के पास रहते आए हैं, वे पिछड़ी और दलित जातियों के पास नहीं रहे हैं। इसी तरह जो अधिकार पुरुष समुदाय को हासिल रहे हैं, वे ही अधिकार स्त्रियों को प्राप्त नहीं रहे हैं। इस मामले मे जाति और लिंग के अनुसार समाज के रिश्तों को सीमित किया गया है। इन रिश्तों के निर्माण में आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। ऐसा भी समय आया है जबकि

निम्न समझी जाने वाली जातियों ने भी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति हासिल कर अपनी राजसत्ताएँ स्थापित की हैं और वे भी राजपूत ही कहलाए हैं। इतिहास में मौके-बेमौके स्त्रियों तक को भी वे ही अधिकार मिल गए हैं जो पुरुषों को प्राप्त रहे हैं। लेकिन ऐसा कम अवसरों पर ही पाया गया है और इसे अपवाद ही कहा जा सकता है।

आज की जाति-व्यवस्था के संबंध में समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि आज हमें भारत की जाति व्यवस्था का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है उसके सबसे महत्वपूर्ण लक्षणों में से एक है, इसके श्रेणीक्रम में स्पष्टता की कमी। इसका कारण है कि जातियों के बतौर संरचना का निरन्तर शिथिल होते जाना और नीची समझी जाने वाली जातियों का आर्थिक राजनीतिक सुदृढ़ीकरण होते जाना। इससे पूर्व मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन ने देश की निम्न समझे जाने वाली जातियों में भक्ति की धारणा ने लोकजागृति उत्पन्न की थी। इसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि धर्म में कर्मकाण्ड या जाति की बजाय ईश्वर भक्ति ही सबसे महत्वपूर्ण बात है। भक्ति आन्दोलन यद्यपि सामाजिक-आर्थिक स्तर पर सभी जातियों के बीच समानता के संबंध नहीं पैदा कर पाया किन्तु भावभूमि के स्तर पर इसने समानता के भाव को पैदा कर दिया। भक्त-सन्तों ने सभी धर्मों की मूलभूत समानता और ईश्वर की एकता पर विशेष बल दिया और यह मान्यता प्रतिपादित की कि मनुष्य का गौरव उसके जन्म से नहीं, आचरण और कर्म से प्रतिष्ठित होता है। इस आन्दोलन के प्रणेताओं ने पौराहित्य कर्म और कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए हर व्यक्ति की मुक्ति के उपाय के रूप में सहज भक्ति और विश्वास पर जोर दिया।

भक्ति आन्दोलन की खास देन है भक्ति के क्षेत्र में सभी स्तरों पर समता की धारणा का प्रसार। इससे जहाँ एक ओर जातियों में आपसी समानता के विचार को बल मिला, वहीं स्त्री-पुरुष के भेद को भी अस्वीकार किया गया। कश्मीर में ललद्यद, दक्षिण में आन्दाल व अक्क महादेवी तथा राजस्थान में मीरा ने इस आन्दोलन में स्त्री-स्वाधीनता व समानता की भावना को विस्तार प्रदान किया। इससे पूर्व पुरुषों द्वारा निर्मित शास्त्र-ग्रन्थों में स्त्रियों के लिए अलग से इस तरह के बंधन निश्चित कर दिए थे, जो उसे बचपन से लेकर बुढ़ापे तक पुरुष के नियंत्रण और संरक्षण में रहने के लिए बाध्य करते। सामन्ती व्यवस्था में इनसे जो रिश्ते बने उनमें स्त्री को पुरुष की उपभोग की वस्तु से ज्यादा नहीं समझा जाता था। भक्ति आन्दोलन ने इस तरह की विषम और अन्यायपूर्ण स्थिति पर प्रहार किया था, जिससे मीरा सरीखी महान भक्त कवयित्री का अविर्भाव हुआ।

मध्यकाल में भारतीय समाज एक नए धर्म की संस्कृति और समाज व्यवस्था के सम्पर्क में आया। यह नया धर्म था - इस्लाम, जिसमें सामाजिक स्तर पर हिन्दू धर्म जैसी सोपानक्रमीय जाति-व्यवस्था की शुद्धतावादी और विषम व्यवस्था के लिए ज्यादा जगह नहीं थी। इस नए सम्पर्क से भी हिन्दू धर्म में नीच समझी जाने वाली जातियों में एक नया उत्साह पैदा हुआ। इससे दर्शन और चिन्तन के क्षेत्र में भी एक नई लहर उठी, उसमें रामानुजाचार्य सरीखे चिन्तक ने कहा कि भक्ति, सभी जातिभेदों से ऊपर है और ईश्वर के सामने उसके सभी भक्त समान हैं। लेकिन सामन्ती व्यवस्था में विषमता को केवल भावात्मक स्तर पर समाप्त किया जा सकता था, व्यावहारिक स्तर पर कतई नहीं। किसी भी व्यवस्था में व्यावहारिक स्तर पर समानता लाने के लिए जरूरी है, उसके आर्थिक-उत्पादक तथा राजनीतिक रिश्तों और आधारों को बदलना। इसके बावजूद मानसिक और भावात्मक स्तर पर समता के विचार ने साहित्य और संस्कृति की दुनिया में एक नया वातावरण बनाया जिससे हिन्दी के महान भक्ति-साहित्य की रचना हुई। यह समानता जहाँ जातियों के स्तर पर व्यक्त की गई थी, वहीं स्त्री-पुरुष के रिश्तों के स्तर पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इसी वातावरण में मीरा की तेजस्वी व परिवर्तनकारी काव्य प्रतिभा प्रकट हुई।

2.2.3 स्त्री-पराधीनता

मीरा के समय की सामाजिक व्यवस्था में जो दशा दलित जातियों की थी, लगभग वैसी ही स्त्रियों की भी थी। जैसे द्विज वर्णों व दलितों के बीच भेद और वैषम्य की दीवार खड़ी कर दी गई थी वैसे ही स्त्री-पुरुष के बीच में भी। सामन्तवादी व्यवस्था में पूरा दलित वर्ग सवर्णों की आधीनता में काम करने को विवश हुआ। इसी व्यवस्था में स्त्री को भी पुरुष की आधीनता में रहना पड़ा है। पुराने कबीलों के टूटने पर और श्रम का नया विभाजन होने पर वर्ण और जातियों का प्रादुर्भाव हुआ है। इनमें जिस वर्ण या वर्ण-समूह ने अतिरिक्त उत्पादन पर अधिकार कर लिया, वह सवर्ण की श्रेणी में आ गया और जो कब्ज़ा करने में विफल रहा, वह दलित एवं निम्न जातियों की श्रेणी में विभक्त होता चला गया। इसी सोपान-क्रम में स्त्री भी, पुरुष की आधीनता में आई। स्त्री घर के चौके चूल्हे और सन्तानोत्पत्ति का काम करने लगी, जबकि पुरुष बाहर के जीवन-संग्राम में हिस्सा लेने लगा। जैसे वह सवर्ण के रूप में सम्पत्ति का स्वामी बनता है वैसे ही स्त्री के सामने पुरुष के रूप में सम्पत्ति का मालिक। यही स्वामी-भाव उसे स्त्री का स्वामी भी बना देता है। यह सामान्य स्थिति है लेकिन इसके विशिष्ट रूप और संबंध, कार्यप्रणाली के आधार पर बने। उच्च वर्णों की महिलाओं में, निम्न वर्णों की महिलाओं की तुलना में पराधीनता के स्तर ज्यादा सघन और बड़े हैं क्योंकि वे पुरुषों के ऊपर पूरी तरह निर्भर रहती हैं। इनकी तुलना में निम्नवर्ण की स्त्रियाँ अपने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं, इस वजह से उनकी पुरुष पर निर्भरता कम रही है, इसलिए यहाँ पराधीनता के स्तर उतने सख्त एवं दृढ़ नहीं रहे हैं।

भक्ति - आन्दोलन से भावात्मक स्तर पर समानता का एक नया वातावरण तैयार हुआ और निम्न जातियों मे आत्मोत्थान की भावना का प्रसार। निम्न जातियों के शिल्प कौशल से, इनके उत्पादन - संबंधों में भी एक नया आधार प्राप्त हुआ, जिससे इनकी चेतना को भी व्यक्त होने का नया अवसर मिला। इसी वातावरण ने स्त्री को भी अपनी स्थिति के बारे में सोचने की एक नई दिशा मिली क्योंकि भक्ति की दृष्टि से जैसे द्विज और दलित में कोई अंतर नहीं होता वैसे ही स्त्री-पुरुष में भी। इससे निश्चय ही, नारी-समाज के भीतर नए उत्साह का संचार हआ। इसी उत्साह के वातावरण में मीरा के मन में राजमहल के बाहर निकलकर खुली हवा और संत-साधुओं के सत्संग में अपने प्रिय श्रीकृष्ण के प्रति निवेदन व्यक्त करने का हौसला उत्पन्न हुआ। जब तक किसी व्यक्ति में समता का विवेक उत्पन्न नहीं होता तब तक वह मीरा की तरह का विद्रोही एवं जोखिम उठाने वाला फैसला नहीं करता। इस नए वातावरण में इस तरह का फैसला अकेली मीरा ने नहीं अपितु अन्य अनेक नारियों ने किया था। लेकिन मीरा का फैसला उनके विद्रोह और त्याग की वजह से विशिष्ट एवं क्रान्तिकारी बन गया। "भक्तमाल" में इस श्रेणी में आने वाली, "कलियुग युवतीजन भक्त" की सूची में तीसियों भक्तिनों के नाम दिए गए हैं, जिनमें यद्यपि प्रसिद्ध भक्तिनों के नाम शामिल नहीं हैं।

2.3 मीरा का समय : आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

2.3.1 आर्थिक पृष्ठभूमि

आर्थिक दृष्टि से मीरा का समय इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इस समय में कारीगरी और शिल्प-कौशल की विशेष प्रगति हुई। इतिहासकारों की राय में शासक वर्ग की सत्ता के स्थापित हो जाने के बाद से 13 वीं-14 वीं शताब्दियों में विलास सामग्री एवं सुविधाओं की माँग में वृद्धि हुई। इस वजह से यहाँ पहली बार अनेक नई कलाओं, तकनीकों की

नई-नई प्रणालियों की शुरूआत हुई। वास्तुकला के स्तर पर गुम्बदों, महराबों का निर्माण किया जाने लगा और कागज का उत्पादन होने लगा। घोड़ों के लिए नालों और रकाबों की जरूरत की आपूर्ति की जाने लगी। ऊँचे दरजे के सिले हुए वस्त्रों की माँग में इज़ाफा हुआ। इससे देश में शिल्पियों और कारीगरों की भारी माँग पैदा हुई, जिसने देश के सामाजिक ढाँचे में बड़ा भारी बदलाव किया। इससे निम्नवर्ण के कारीगरों की आर्थिक दशा भी सुधरी, जो सामाजिक हैसियत पाने के लिए और चेतना संबंधी काम करने के लिए आवश्यक होती है।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में सामन्ती व्यवस्था के अनुसार लोगों का जीवन वर्गीय आधार पर चलता था। किसान को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, तभी वह जीवित भर रहने का जुगाड़ कर पाता था। वह अपने उत्पादन का एक तिहाई कर के रूप में चुका देता था। जबकि किसान की तुलना में गाँव के मुखिया और छोटे जमींदार का जीवन-स्तर ऊँचा था। ये लोग अरबी और ईराकी घोड़ों की सवारी करते थे और बढ़िया कपड़े पहनते थे। उत्तर भारत का ज्यादातर व्यापार मारवाड़ी और गुजराती व्यापारियों के हाथों में था। गुजरात का खम्बात नगर कपड़ों और सोने - चाँदी के काम के लिए मशहूर था। मीरा ने अपने पदों में कई तरह के आभूषणों का उल्लेख कई जगहों पर किया है। एक जगह मीरा ने कहा है "हार सिंगार सभी मेरो तोरयो, दुलरी कहाँ डारी लाल रे"। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि तत्कालीन उच्च वर्ग और राजारईसों के पास इस तरह के वस्त्राभूषण होते थे - "क्षुद्र घंटिका कटि कर सोहै, भुज पर बाजू धारी। कड़ा मरहटी सुघर नेवरी, नूपुर की झुँणकारी।" मीरा का संबंध चूँकि तत्कालीन उच्चवर्ग से था, इसीलिए उसके लिए किसी भी तरह के वस्त्राभूषणों की कमी नहीं थी। यह अलग बात है कि उसकी मूल साधना के सामने इस तरह के वस्तु-वैभव का कोई अर्थ नहीं रह गया था। मीरा ने कई जगह कहा है कि मेरा मन तो गिरधारी से लग गया है। अतः मैं माणिक्य, मोती आदि के आभूषण पहन कर क्या करूँगी। आगे मीरा कहती है कि उनके आभूषण तो अब माला, दोवड़े और चन्दन की चुटकी ही रह गए हैं।

मीरा का संबंध, उस समय के दो जनपदीय राज्यों-मारवाड़ और मेवाड़ से था। मारवाड़ के मेड़ता में उनका जन्म हुआ और मेवाड़ के चित्तौड़ में ससुराल। इन दोनों जनपदों में जो जीवनस्तर राजा-रईस और सामन्तों का था, वैसा सामान्य प्रजा और मेहनतकश किसान-मजदूर का नहीं था। जब अकाल पड़ता था तो किसान एवं अन्य सामान्य प्रजा ही अन्न के अभाव में कष्ट पाती थी। सुलतान, राजा, अधिकारी, व्यापारी और साहूकार अर्थव्यवस्था पर अपना अधिकार रखते थे और सामान्य प्रजा का काम था मेहनत करना, उत्पादन बढ़ाना और शासक वर्ग की सेवा करना। इससे जो आर्थिक रिश्ते बनते थे, उनमें छल-बल, शोषण और उत्पीड़न का ही बोलबाला था। सामान्य जन अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं था। मीरा ने अपनी स्थिति को सामान्यजन के साथ एकाकार कर लिया था, इस वजह से वह भी अपने समय की सामन्ती व्यवस्था और उसके द्वारा कायम किए गए रिश्तों की वास्तविकता के प्रति संतुष्ट नहीं थी।

2.3.2 राजनीतिक स्थिति

मीरा का संबंध राजकुल से होने के कारण तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का भी उनके व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करने में योगदान रहा है। मीरा इस मामले में विशिष्ट हैं कि उनको राजसी वैभव सुलभ होने के बावजूद उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। सामान्यतः, सामान्य लोग, वैभव जुटाने को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय मानकर काम करते हैं, लेकिन मीरा इस तरह के सामान्य मार्ग की अवहेलना करती हैं। भोग-

विलास के प्रति आसक्ति न होने के कारण मीरा का जीवन सामान्य से विशेष बन गया था। उनके समय में मारवाड़ और मेवाड़ जैसे जनपदीय राज्य दिल्ली के केन्द्रीय शासन से स्वाधीनता की स्थिति में आ गए थे। ये दोनों राज्य तत्कालीन राजपूताने के राज्यों में विशेष अहमियत रखते थे। इन्हीं में मारवाड़ के जोधपुर राज्य की मेड़तिया राठौड़ वंश में मीरा का जन्म हुआ और मेवाड़ के शासक राणा परिवार में उनका विवाह हुआ। इन राज्यों की संघर्षमय राजनीतिक परिस्थितियों ने मीरा की जीवनधारा को गति प्रदान की।

जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधाजी के चौथे पुत्र राव दूदाजी ने अपने भाई वरसिंह के साथ मिलकर मेड़ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और मेड़ता में आकर रहने लगे थे। इसी वजह से उनके वंशज राठौड़ों की उपशाखा के रूप में मेड़तिया कहलाए। मीरा का जन्म इसी वंश में राव दूदा के चौथे पुत्र रतनसिंह की पुत्री के रूप में हुआ। उस समय मेड़ता के शासक वरसिंह व वीरमदेव हुए लेकिन वीरमदेव से जोधपुर के राजा मालदेव की अनबन हो गई। इसके फलस्वरूप 1535 ई. में मेड़ता पर मालदेव का अधिकार हो गया। जब सन् 1544 में शेरशाह ने जोधपुर को जीत लिया, तभी मेड़ता इसके शासक वीरमदेव को वापस मिला। मेड़ता पर आधिपत्य करने का यह संघर्ष बाद में भी चलता रहा, जब कि एक बार पुनः इसके स्वामी जयमल के हाथों से यह मालदेव के अधिकार में आ गया। बाद में मेड़ता को मालदेव से अकबर ने छीन लिया। इससे पता चलता है कि मीरा के जन्म के समय से लगाकर उनके अंतिम समय तक उनकी जीवनस्थली मेड़ता में राजनीतिक दृष्टि से आधिपत्य को लेकर लगातार संघर्ष बना रहा। उनके परिजनों और कुटुम्बियों को उसको अपने अधिकार में रखने के लिए जोधपुर के मालदेव से, कई बार जूझना पड़ा। इस तरह के कार्यों में शूरवीरता के साथ-साथ छल-बल और षड्यंत्रों का सहारा भी लेना पड़ता है। मनुष्यता और नैतिकता का परित्याग करके ही राज्य सत्ता को बनाया और बचाया जा सकता है। इस सत्ता को पाने और इसका विस्तार करने में पिता का पुत्र से, पुत्र का पिता से और सगे भाई का भाई से भी खून और सगेपन का रिश्ता तोड़ना पड़ जाता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि अपनी सत्ता को कायम करने के लिए शासकों ने अपने पिता, पुत्र और भाइयों तक का रक्त बहाया है। मीरा के मन में निश्चय ही, इस तरह के कुत्सित वातावरण से विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ होगा और उसने अपने जीवन की अलग राह बनाने का मन में ठान ली होगी। यह दूसरे तरह की शूरवीरता है, जो लोगों के मन में भौतिक राज्यों के निर्माण की अपेक्षा ऐसे मनोराज्यों का निर्माण करती है, जो कालजयी होते हैं तथा जिनका शासन किसी एक छोटे भूभाग पर न होकर पूरी दुनिया पर उसके अस्तित्व तक कायम रहता है। मीरा ने अपने जीवन-संघर्ष से इसी तरह की कालजयी और सार्वदेशिक शूरवीरता प्रदर्शित की थी।

जिस तरह की राजनीतिक उथल पुथल मेड़ता में थी, उसी तरह की मेवाड़ के चित्तौड़ में भी थी, जहाँ विवाह के बाद मीरा आ गई थी। मीरा का विवाह मेवाड़ के प्रतापी शासक राणा सांगा के पुत्र भोजराज के संग सन् 1516 में किया गया था। उनके शैशवकाल में ही मेवाड़ जनपदीय राज्य के शासक और उनके भावी श्वसुर सन् 1509 में चित्तौड़ के शासक बन गए थे। कहा जाता है कि उनकी गौरव महिमा का विस्तार उनके द्वारा जीते गए 18 युद्धों से हुआ, जो उन्होंने दिल्ली व मालवा के सुल्तानों के विरुद्ध जीते थे। इन्हीं राणा सांगा के नेतृत्व में खानवा के मैदान में, भारत में मुगल राज्य के संस्थापक बाबर से युद्ध लड़ा गया था। राणा सांगा और अन्य अनेक राजाओं की पराजय इस युद्ध में हुई। इसके बाद 1528 ई. में राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह चित्तौड़ का शासक बना, जो केवल तीन साल तक ही रह पाया। इसके बाद इनका छोटा भाई विक्रमादित्य चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा, जिसके शासनकाल में मेवाड़ की राज्यव्यवस्था चौपट हो गई। यह एक अयोग्य और अदूरदर्शी शासक था। माना जाता है कि इसी राणा ने मीरा को भारी कष्ट

दिया था। यह कुसंगति में फँसा हुआ था। इससे पृथ्वीराज के अनौरस (पासवान से उत्पन्न) पुत्र वणवीर ने इसे मौत के घाट उतारकर चित्तौड़ की गद्दी पर अपना कब्जा कर लिया। राज्य के सामन्तों में इसकी अकुलीनता व अहम्मन्यता के कारण इसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। इस कारण राज्य में षड्यंत्रों का भारी बोलबाला हो गया था। मीरा को अपने समय में इन सारी त्रासद स्थितियों से गुजरना पड़ा । इन्हीं मनुष्यताशून्य और अनीतिकारी परिस्थितियों ने, मीरा के निश्छल और मानव गरिमा से युक्त मन में उस विरक्तिभाव को सुदृढ़ कर दिया था जो बचपन से ही उनके मन के एक छोटे से कोने में अंकुरित हो गया था। इसका मतलब यह नहीं है कि उनके मन में इस संसार और जीवन के प्रति ही वैराग्य उत्पन्न हो गया था और वे इस संसार को ही मिथ्या मानने लगी थी। सच तो यह है कि उनका वैराग्य और अनासक्ति भाव इस संसार में व्याप्त छल-कपट, अनाचार, अनैतिकता और नृशंसता जैसे दुर्गुणों के प्रति दिखाई देता है, न कि समस्त सांसारिक संबंधों के प्रति। उनके जीवन का ध्येय है इस जीवन को सच्चे प्रेम से सम्पन्न करना। यही काम उन्होंने संसार के वैभव-विलास के प्रति उदासीन रहकर और एक सम्पूर्ण जीवन सम्पन्न श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमासक्त रहकर दिखलाया है। वे अपने व्यवहार से जिन नए रिश्तों और नातों की ओर इशारा करती हैं, वे इस संसार के प्रचलित संबंधों की अमानवीयता का एक विकल्प भी हैं। यद्यपि इस विकल्प का संबंध व्यक्ति की मानसिक स्थिति तक ही सीमित है, उसकी सम्पूर्ण व्यावहारिक बनावट तक नहीं।

2.3.3 सांस्कृतिक वातावरण

मनुष्य का जीवन यद्यपि टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त जैसा दिखलाई देता है किन्तु वह जीता समग्रता में है। उसका व्यक्तित्व-निर्माण मिली-जुली परिस्थितियों में होता है। वह जहाँ एक आर्थिक परिवेश का अंग होता है वहीं इसके साथ सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का भी। इस परिवेश के परिवर्तन का मतलब है युग-परिवर्तन। मीरा का समय इस अर्थ में युग के परिवर्तन का द्योतक है कि इसमें सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों में जो बदलाव हो रहा था, वैसा बदलाव इससे पूर्व के समयों में नहीं हो पाया था। यह मीरा की अपनी आन्तरिक ताकत ही थी कि वह एक राजपूत विधवा होने के बावजूद सती नहीं हुई थी। उसके हृदय में एक नई संस्कृति जन्म ले चुकी थी, जो स्त्री-पुरुष के रिश्तों को कम से कम संस्कृति के मामले में ही सही, समानता के स्तर पर रखती थी। भक्ति के संदर्भ में जो निर्णय पुरुष लेता वही निर्णय स्त्री भी ले सकती थी, यह मीरा ने अपने आचरण से करके दिखला दिया था।

मीरा के समय में संस्कृति की अभिव्यक्ति ज्यादातर "धर्म" या "मज़हब" के माध्यम से हुई। दिल्ली सल्तनत में इस्लाम को राजधर्म घोषित कर स्थानीय आबादी पर थोप दिया गया था। हिन्दू धर्म के निम्नवर्गीय तबकों ने या तो प्रलोभन से या राज्य भय से इस्लाम मतावलम्बी होना स्वीकार कर लिया था। दूसरी ओर व्यापारी और साहूकार वर्ग अभी हिन्दू ही था, जो कर-संग्रहण का काम करता था। सामान्यतः किसान वर्ग भी हिन्दू ही बना रहा। दोनों धर्मों के लोगों के एक साथ संबद्ध बने रहने के कारण दोनों के बीच कुछ सामान्य विश्वासों एवं प्रथाओं का विकास हुआ। हिन्दुओं की कुछ प्रथाओं का असर मुसलमानों पर हुआ, इसी तरह मुसलमानों का हिन्दुओं पर। सूफी संतों की जीवन प्रणाली का असर हिन्दुओं पर बहुत तेजी से हुआ। इस्लाम की जड़ें भारत में इसके सूफी दर्शन के मार्फत गहरी हुईं, जो दोनों धर्मों के बीच भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने वाला था। सूफियों ने भारतीय हिन्दू दर्शन की कई बातों को ग्रहण कर लिया था। कहा जाता है कि मीरा का जन्म अजमेर के सूफी संत मीराँ साहब की मन्नत करने के उपरान्त हुआ था, इस आधार पर उनका नाम "मीराँ" रख दिया गया, जो बोलचाल की भाषा में "मीराँ" न रहकर कालान्तर में मीरा हो गया।

मीरा को अपने गृह नगर मेड़ता में वैष्णव भक्ति का वातावरण मिला था। इनके दादा राव दूदा स्वयं शाक्त और वैष्णव भक्त थे। वे राठौड़ों की कुलदेवी चामुण्डा की उपासना के साथ-साथ भगवान विष्णु में भी आस्था रखते थे। उन्होंने मेड़ता में चारभुजा का मंदिर बनवाया था। इस वातावरण का प्रभाव मीरा के बालमन पर पड़ा और वे श्री कृष्ण के सौंदर्य पर आसक्त हो गईं। उन्होंने श्रीकृष्ण की महिमा को स्वीकार करते हुए उनके प्रति अपना समर्पण भाव बचपन से ही मन में धारण कर लिया था। अपने इस भाव पर वे अंतिम समय तक दृढ़ता से डटी रहीं। उन्होंने अपने मन में प्रेम की जो धारणा बनाई थी, वह अपने जीवनानुभव के अनुरूप बनाई थी। कहा जाता है कि जब वे अपने पीहर मेड़ता से अपनी ससुराल मेवाड़ पहुँची तो मेवाड़ी शासक वर्ग की अपनी परम्परा के अनुरूप उनसे कुलदेवी को पूजने का आग्रह किया गया तो उन्होंने जवाब दिया कि जो पहले से ही गिरधर के हाथों बिक चुकी हो, वह किसी और की पूजा कैसे कर सकती है? मेरी भावनाएँ तो मेरे आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित हैं। प्रियादास ने "भक्तमाल" की टीका "भक्तिरस-बोधिनी" में लिखा है -

देवी के पुजाईबे कों, कियौ लै उपाय सासु
बर पै पुजाई, सुनि वधू पूनि भाखियै।
बोली जू बिकायौ माथो, लाल गिरधारी हाथ
औ को न नवै, एक वहीं अभिलाखियै।।

इस विवरण के प्रतीत होता है कि मीरा का श्रीकृष्ण के प्रति यह समर्पणभाव आरंभ से ही था और यही कारण रहा होगा, जो उनके प्रति राणा-परिवार के विरोध का कारण बना। मीरा के विरोध में राणा के साथ-साथ सास और ननद भी रही हैं। इस बात पर जरूर विवाद है कि मीरा के प्रति यह विरोधभाव उनके पति भोजराज का है या उनके जेठ राणा विक्रमादित्य का, या फिर दोनों का ही है अर्थात् पूरे परिवार का है। बात दरअसल यह है कि मीरा का मन आरंभ से ही श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त था, जो "मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।" - जैसे पदों में स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ संभावनाएँ सभी तरह की हैं। लौकिक और आध्यात्मिक संसारों में भी जो भौतिक शक्ति लौकिक संसार को प्राप्त है, वह आध्यात्मिक को कहाँ? मीरा सरीखी महिला की यह अद्वितीयता है कि वे अध्यात्म के समक्ष, लौकिकता को नकार देती हैं और उससे भिड़ जाती हैं। मीरा का महत्व उनके जीवनसंघर्ष, आत्मत्याग और उस नैतिक दृढ़ता में है, जो संस्कृति के लिए आलोक पुंज का काम करती है। संस्कृति, दरअसल इसी को कहते हैं।

2.4 मीरा का समय : दार्शनिक भावभूमि

मीरा के समय तक उत्तर भारत में "भक्ति आन्दोलन" अपनी चरम स्थिति में था और वह भक्ति की निर्गुण मान्यताओं से होकर सगुण मार्ग में प्रवेश कर चुका था। कबीर के ज्ञाननिष्ठ प्रेममार्ग और सूफियों के प्रेममार्ग की धाराएँ हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों पर अपना एक प्रभाव कायम कर चुकीं थी। कृष्ण भक्ति-समाज के अंतर्गत वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु सरीखे चिन्तक व भक्त अपने-अपने तरीके से श्रीकृष्ण को आराध्य मानकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करने में लगे थे। दार्शनिक दृष्टि से मीरा को एक मिलाजुला वातावरण मिला था। आदि शंकराचार्य ने अद्वैतवादी वेदान्त की व्याख्या करते हुए स्थापित किया था कि इस सृष्टि में सत्य कोई है तो वह केवल ब्रह्म है। यह जगत जो हमारी आँखों के सामने है, मिथ्या है - "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।" इस दार्शनिक विवेचना को अस्वीकार करते हुए रामानुजाचार्य ने अपने नजरिए से ब्रह्म, जगत, आत्मा की व्याख्या करते हुए बतलाया कि जगत मिथ्या नहीं है, वह सत्य है। जीवन और जगत ब्रह्म के शरीर

हैं। शंकर का ब्रह्म विशेषण युक्त नहीं है, जबकि रामानुजाचार्य का ब्रह्म विशेषणयुक्त है। इसलिए उनके मत को विशिष्टाद्वैत कहा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भक्त और विचारक की दृष्टि "ब्रह्म" पर ही केन्द्रित न रहकर इस संसार की ओर गई, जो रामानुज की दृष्टि में वास्तविक है। रामानुजाचार्य की इस व्याख्या का गहरा असर लोगों के मन पर हुआ, जो दक्षिणी भारत में पहले से चली आ रही आलवार भक्तों की लहर में समाविष्ट होकर उत्तरी भारत की ओर फैली। रामानुज 12वीं सदी में हुए जब कि उत्तर भारत में यह लहर इसके बाद रामानन्द के संग आई। इसी से कहावत बनी "भक्ति द्राविड़ उपजी, लाए रामानन्द।"

इससे पूर्व उत्तरभारत में तुर्की शासन की स्थापना से भारतीय समाज में एक नई आर्थिक आधार भूमि तैयार हो चुकी थी। हिन्दू समाज में नीच समझी जाने वाली कमेरी जातियों ने नई शिल्पकारी को अपनाकर अपना आर्थिक आधार पहले की तुलना में मजबूत कर लिया था। जिससे वे व्यक्तिमन की चेतन गतिविधियों में भाग लेने का साहस जुटा सकीं थी। कबीर का पदार्पण इसी मजबूत आर्थिक भूमि पर हुआ था और वे भक्ति के क्षेत्र में उच्च वर्ण को ललकार कर उसके अन्तर्विरोधों को उजागर कर सके थे। इस नए वातावरण में भक्ति के स्तर पर जाति-प्रथा को करारा झटका लगा था। यद्यपि इससे पहले भी बौद्ध चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में जाति-प्रथा पर प्रहार हो चुका था, जो नाथों और सिद्धों की विकसित परम्परा में अपनी तेजस्विता दिखला चुकी थीं। इसी चिन्तन-परम्परा ने कबीर में आकर अत्यन्त प्रखर एवं विद्रोही रूप धारण किया, लेकिन इससे स्त्री-पुरुष के बीच रिश्तों में व्याप्त अन्तर्विरोध उजागर नहीं हो सके थे। स्त्री के सवाल पर कबीर आदि संत कवि, रूढ़िवादी चिन्तन की गिरफ्त से बाहर नहीं निकल पाए थे। यद्यपि कृष्ण भक्ति परम्परा की यह विशिष्टता रही कि उसमें स्त्री की उपेक्षा करने के बजाय, उसको पूरा सम्मान मिला। इसमें अनेक स्त्रियाँ वैष्णव जन के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। सूफी काव्य एवं चिन्तन परम्परा में भी स्त्री को ईश्वर के समकक्ष रखा, लेकिन उसके विद्रोही रूप की अभिव्यक्ति अभी तक होना शेष था। इसकी अभिव्यक्ति हिन्दी में पहली बार मीरा के आचरण और चिन्तन दोनों स्तरों पर हुई। यह अवकाश श्रीकृष्ण के स्वरूप और व्यवहार के स्तर पर ही ज्यादा मिल सकता था। मीरा ने, कदाचित इसी वजह से श्रीकृष्ण के विग्रह को अपने आराध्य के रूप में ग्रहण किया क्योंकि एक अबला के लिए विद्रोह करने का मौका इसी जगह पर था। वे किसी सम्प्रदाय के भीतर अपनी स्वाधीन प्रवृत्ति के चलते ही कदाचित नहीं आईं।

भक्ति आन्दोलन के नए आर्थिक-राजनीतिक वातावरण में नए विचारों को उभरकर आगे आने का अवसर मिला। यह समय की जरूरत थी, जबकि समाज में स्वाधीनता और समता के सवालों को उठने से, ज्यादा रोक पाना मुश्किल था, यद्यपि रूढ़िवादी ताकतें भी अपनी जगह काम कर रही थीं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि रामानुज और उनकी शिष्य परम्परा में 'रामानन्द के वेदान्ती विचार भक्ति-आन्दोलन को सर्वाधिक प्रेरणा देने वाले थे। रामानुज ने बतलाया था कि सभी मनुष्य ईश्वर से अपनत्व स्थापित कर सकते हैं और भक्ति के माध्यम से जीवन का सर्वोच्च आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इससे सभी जातियों और लिंगों में एक नया विश्वास पैदा हुआ था। तभी तो निम्न समझी जाने वाली जातियाँ और निम्न मानी जाने वाली स्त्रियों में भी भक्ति के प्रांगण में पदार्पण करने का साहस पैदा हुआ था, जहाँ वे समत्व भाव को प्राप्त कर सकती थीं। विद्वानों का यह भी मानना कि भक्ति आन्दोलन पर इस्लाम के विचारों का भी प्रभाव पड़ा था। कबीर ने अपनी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बात करते हुए एक जगह पर कहा है कि "या अल्लाह!, हे राम! मेरा भ्रम दूर हो गया। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कोई भेद नहीं है।"

मीरा की उपासना पद्धति में यद्यपि कई तरह की वैचारिक और दार्शनिक धारणाओं का मेल देखने को मिलता है तथापि वे हैं, सगुणमार्गी ही। उनके पूर्व ईश्वर की सगुण धारणाओं को व्यक्त करने वाली चिन्तन परम्परा निम्बार्क, मध्व, रामानुज, वल्लभ आदि के चिन्तन में व्यक्त हो चुकी थी, जो ईश्वर की सगुण भक्ति में पर्यवसित हुई थी। इससे पूर्व दक्षिणी भारत में पाँचवी से लगाकर नवीं सदी तक आलवार भक्तों ने भक्ति की सरिता प्रवाहित की थी। इन आलवार भक्तों में ज्यादातर निम्नजातियों के स्त्री-पुरुष थे। इन विचारों का प्रभाव रामानुज के मन पर पड़ा, जो आगे चलकर रामानन्द के माध्यम से उत्तरी भारत में फैला। रामानंद का अपना सम्प्रदाय "रामावत" कहलाया। रामानन्द ने अपने सम्प्रदाय में शूद्र जातियों, स्त्रियों और मुसलमानों को भी समानभाव से प्रवेश दिया, लेकिन मुसलमान की तुलना में वे भी हिन्दू को श्रेष्ठ मानते थे और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं देते थे। सभी लोग भक्ति में समान हैं, ज्ञान और आचार में नहीं, इस तरह का द्वैत इस विचारपद्धति में बना हुआ है। इससे इनके विचारों में एक क्षेत्र में समानता होने के बावजूद अन्तर्विरोध की स्थिति बनी रह गई थी। इस वजह से इनके विचारों में एक ओर उदारता के प्रति आग्रह था तो दूसरी ओर शास्त्रीय परम्पराओं के प्रति झुकाव होने के कारण संकीर्णता की भी इनके यहाँ स्वीकृति थी। इन्हीं विचार स्रोतों के रूप में इससे जहाँ एक ओर कबीर जैसे विद्रोही की धारा प्रवहमान हुई तो दूसरी ओर तुलसीदास सरीखे वर्णाश्रमधर्मी सगुणमार्गियों की।

मीरा के आराध्य गिरधर गोपाल हैं, जिनके सिर पर मोर का मुकुट है। उन्होंने द्रौपदी की लज्जा की रक्षा की है। इस रूप को उत्तर भारत में दार्शनिक आधार प्रदान किया- निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य ने। निम्बार्क के अनुसार श्री कृष्ण ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं और राधिका सौन्दर्य की ज्योतिपुंज हैं, जिनकी हजारों सखियाँ सेवा करती हैं। ऐसे श्रीकृष्ण की आराधना ब्रह्मा, शिव आदि देव भी करते हैं। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार श्रीकृष्ण देवाधिदेव हैं और प्रेमप्रेरक हैं। उनके व्यूह सिद्धान्त का आधार है -प्रेम और लीला। उनकी मूल शक्ति प्रेम है। यही प्रेम, भक्त के चित्त में महाभाव में परिणत हो जाता है। वल्लाभाचार्य का असर, ब्रजप्रदेश में व्याप्त श्री कृष्ण के भक्ति स्वरूप पर सबसे ज्यादा रहा है। उनके अनुसार कृष्ण सर्वोच्च ब्रह्म हैं। राधाकृष्ण की लीला में प्रवेश कर जाने से भक्त अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है जो भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से संभव होता है।

मीरा ने अपने समय के किसी विशिष्ट दार्शनिक भक्ति सम्प्रदाय से अपना संबंध नहीं स्थापित किया था। उनको तो भक्तिभाव में प्रेमसाधना के लिए जहाँ से भी, जो कुछ मिल सकता था, वह सब उन्होंने ले लिया है। उनका केन्द्रीय तत्व है श्रीकृष्ण का माधुर्यपूर्ण सौंदर्य। वह रूप सौन्दर्य के साथ कर्म-सौन्दर्य भी है, जिनको भक्तिविधान के अंतर्गत "लीला" नाम दिया गया है। कहा जाता है कि मीरा को बचपन से ही वैष्णवभाव को व्यक्त करने वाला सत्संग मिला था। वे अपने विद्यागुरु गदाधर जी से पुराणादि की कथाएँ सुना करती थीं। श्रीमद्भागवत पुराण को भी उन्होंने अवश्य सुना होगा, जो कृष्णलीला का सबसे प्रमुख स्रोत रहा है और इस वजह से सर्वाधिक लोकप्रचलित भी। यह ग्रन्थ मीरा की कविता का ही नहीं, वरन् ब्रजभाषा की समस्त कृष्ण काव्य परम्परा का स्रोत ग्रन्थ रहा है। वैसे भारतीय जीवन में कृष्णकथा के अन्य स्रोत ग्रन्थों के रूप में महाभारत, हरिवंश पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, पद्मपुराण आदि का प्रभाव भी रहता आया है और काव्य परम्परा में जयदेव कृत "गीतगोविन्द" तथा विद्यापति के पदों की खासी भूमिका रही है। श्रुति परम्परा के रूप में मीरा ने भी इनमें अवश्य अवगाहन किया होगा।

मीरा के युग में निर्गुण सन्त मत और सूफियों के माध्यम से प्रेम की पीर की धाराएँ प्रवहमान थीं, जो परमात्मा के प्रति दाम्पत्य भाव की तरह स्वयं को व्यक्त करती थीं। इसके अंतर्गत कबीर सरीखे सन्त भी "राम" को अपना प्रियतम मानकर उनकी बहुरिया बन गए

थे - "राम मेरे पिउ, मैं राम की बहुरिया" कहकर वे अपने मन की माधुर्य भावना को व्यक्त करते थे। प्रेम की पीड़ा सूफ़ी दर्शन और कविता में भी अत्यन्त सघन और उदात्त स्तर पर व्यक्त हुई है किन्तु वहाँ परमात्मा को प्रियतमा मानकर और आत्मा उसका प्रियतम बनकर प्रेम की साधना (पीड़ा) में संलग्न होते हैं। मीरा का वैशिष्ट्य यह है कि उनको अपने व्यक्तित्व में कुछ भी हेरफेर और कृत्रिम बदलाव नहीं करना पड़ा था। वे स्वयं एक प्रेम-पीड़ित स्त्री हैं और श्रीकृष्ण परम पुरुष। इसलिए उनकी प्रेमसाधना, भावों की अविरल सरिता को प्रवाहित करने वाली एक सहज साधना बन जाती है। वे अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रेम में हाथी के समान मदमस्त होकर घूमती हैं क्योंकि उनके बिना दूसरा कोई इनके मन को जानने वाला नहीं है -

मदमाते हस्ती सम, फिरत प्रेम लटकी।
मीरा के प्रभु गिरधर-बिन, कौन जाने घट की।।

मीरा के मन पर अपने युग की बातों का गहरा प्रभाव था। हर विवादास्पद स्थान पर उन्होंने अपने मन का निर्णय ही स्वीकार किया है। युग के अपप्रभावों से उन्होंने स्वयं को लगातार बचाने की कोशिश की है। जिसके मन में कोई प्रलोभन नहीं होता, वह किसी से डरता नहीं है। राज्यवैभव के प्रलोभन की बात तो बहुत दूर है, मीरा को अपने प्राणों तक का प्रलोभन नहीं था, फिर वह किस से डरने वाली थीं। अपने समय के बड़े दार्शनिकों के विचारों की सीमा में भी वे बँधकर नहीं चलीं थीं। एक पद में उन्होंने अत्यंत निडरतापूर्वक कहा है -

म्हारो मनड़ो राजी राजी जी।
कांई करैला म्हारो दुरजन पुरजन, कांई करैला म्हारा झूँठा पाजी जी।
कांई करैला म्हारा राजा-राणी, कांई करैला मुल्ला काजी जी।

नाथ सम्प्रदाय में प्रचलित शब्दावली से भी मीरा प्रभावित रही हैं। किंतु यह प्रभाव उनके उन्हीं पदों में सूचित है, जहाँ वे "जोगी" व "जोगिन" से संबंधित धारणाओं का प्रयोग करती हैं। सच तो यह है कि इस तरह के पदों में उनकी सम्प्रदायबद्धता सूचित नहीं होती। इतना अवश्य है कि भावनाओं के एक बृहद् कोष में मीरा के यहाँ उन सभी भावों और धारणाओं का स्थान रहा है, जो उनकी माधुर्यभावना को चौतरफा व्यक्त करने में उनका सहयोग करता है। जैसा कि कहा जा चुका है कि वे किसी एक दार्शनिक सम्प्रदाय की परिपाटी और रूढ़ियों से बँधकर नहीं चली थी। वे अपने समय में पूरी तरह निमग्न होकर अपना मार्ग बना रही थीं और वह मार्ग, केवल मीश का ही मार्ग हो सकता था। इस मार्ग में तत्कालीन लोकजीवन में प्रसिद्ध लोकसंत जाम्मोजी आदि का सहयोग भी उनको मिला होगा।

2.5 मीरा का समयः साहित्य और संगीत

2.5.1 साहित्य

मीरा के काव्य का संबंध साहित्य और संगीत दोनों की परम्पराओं से रहा है। उनकी पद-रचना का स्वरूप एक साहित्य-परम्परा के अंतर्गत निर्मित हुआ है। श्रीकृष्ण के स्वरूप के प्रति उनकी माधुर्यभावना का निर्माण एक प्राप्त परम्परा के अंतर्गत हुआ है, जो उनको एक ओर पहले से चली आती हुई पुराण और चिन्तन परम्परा से मिलीं, वहीं कृष्णकाव्य की लम्बी परम्परा से भी। अपने कई पदों में स्वयं मीरा ने रैदास के गुरु-ऋण को स्वीकार किया है :

1. नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पिया जी रा साथ।
मीरां ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास।।

2. म्हांको गुरु रैदास है सजनी म्हारी हे।
जिन सेयो है सालगराम पिय म्हारौ गिरधारी।।

3. खोजत फिरुं भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी।

रैदास स्वयं एक संत कवि थे, जो दलित जाति से आए थे। वे स्वयं चमड़ा खरीदकर, जूते बनाकर बेचने के काम से अपनी आजीविका चलाते थे और गंभीर भावों की कविता भी रचते थे तथा अपने शिष्यों को रास्ता भी बतलाते थे। मीरा का सत्संग इसी तरह के अनेक साधु-संत और साहित्यकारों से हुआ था। साहित्य की परम्परा का ज्ञान उनको इन्हीं के बीच से हुआ होगा।

2.5.2 संगीत

भक्ति आन्दोलन में साहित्य के साथ संगीत की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी -संगीत का उद्‌भव इसी आन्दोलन के माध्यम से हुआ, जो आगे चलकर शास्त्रीय संगीत में परिणत हुआ। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा के साहित्य का इसे निर्मित करने में उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस समय में हरिदास, तानसेन और बैजू बावरा सरीखी हस्तियाँ संगीत में हुईं। स्वयं मीरा की ससुराल में उनके पूर्वज महाराणा कुम्भा का नाम संगीत में अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य-परम्परा की भाँति, मीरा के युग तक संगीत-नृत्य की भी एक परम्परा विद्यमान थी, जिसका एक अत्यन्त उदात्त स्वरूप मीरा के काव्य में मिलता है।

"मीरां बृहत्पदावली" प्रथम भाग के सम्पादक और संकलनकर्ता हरिनारायण पुरोहित ने उनके 662 पदों का एक प्रामाणिक संग्रह किया है, जिनमें हरेक पद के विषयोल्लेख के साथ उसके संगीत के राग और ताल का भी उल्लेख है। उदाहरण के लिए इसके पहले पद "अंखियाँ कृष्ण मिलन की प्यासी" के विषयोल्लेख में उन्होंने "आकांक्षा" शीर्षक दिया है और इसका राग-मालकोश और इसकी ताल-तिताला बतलाई है। मीरा के संबंध में यह बात तो उनके पदों की अन्तर्वस्तु से ही स्पष्ट है कि वे स्वयं अपने पदों को गाती थीं और भावविभोर होकर नाचती थीं। उनका गायन मधुर, प्रियकर व स्वरताल से समन्वित होता था - यह विद्वानों का मानना है। कबीर, सूर, तुलसी की भाँति मीरा की भी हिन्दी संगीत को बहुत बड़ी देन रही है। उनको युग के संगीत ने निर्मित किया है और उन्होंने युग के संगीत को।

2.6 सारांश

मीरा के व्यक्तित्व-निर्माण पर उनके समय का गहरा प्रभाव है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक और कला संबंधी परिस्थितियों को एक ओर वे प्रतिकूल मानकर उनसे संघर्ष करती हैं, दूसरी ओर जिन बातों को अपने लिए अनुकूल मानती हैं, उनका समर्थन करती हैं और उस रास्ते पर स्वभाव के अनुसार चलती हैं। वे इस मामले में अपना निर्णय स्वयं करती हैं और उस पर अविचल भाव से डटी रहती हैं। फिर चाहे उसके लिए उनको कितने ही कष्ट और यातनाएँ क्यों न भोगनी पड़ें? अपनी आस्था और विश्वास के सबंध में इस तरह के निर्णय करने वाले अद्वितीय व्यक्तित्व विरल होते हैं। ऐसे व्यक्ति ही समाज और देश के लिए युग-युगों तक आलोक स्तम्भ का काम करते हैं।

मीरा के समय के रिश्ते सामन्ती ढाँचे में व्यक्त हुए हैं, जिसमें जाति और लिंग संबंधी भेदभावों में पूरा समाज जकड़ा हुआ था। आर्थिक दृष्टि से उस समाज में उच्च और निम्न वर्गों का अपना अलग-अलग जीवन-व्यवहार चलता था। ऊँची जातियों को जो सुविधाएँ हासिल थीं, वैसी निम्न मेहनतकश जातियों को सुलभ नहीं थीं। सब कुछ भाग्य भरोसे पर चलता था। पुरुष के सामने स्त्री का दर्ज़ा भी नीचा माना जाता था। ऐसे में दक्षिणी भारत से उठी भक्ति आंदोलन की लहर ने चौदहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक उत्तरी भारत को भी झकझोरा। इससे समाज के भीतर सामाजिक और लैंगिक समानता के सवाल कई दिशाओं से उठे। इनमें मीरा ने अपनी भावना, विश्वास और आचरण से एक स्त्री के रूप में जो बात उठाई, वह तत्कालीन सामन्ती ढाँचे में आधुनिक जीवन जैसा व्यवहार दिखलाई देता है, भले ही वह भक्ति के माध्यम से ही व्यक्त हुआ हो। इस दृष्टि से मीरा मात्र एक भक्त-कवयित्री नहीं रह जाती वरन् वह समाज को दिशा प्रदान करने वाली लोकनायिका बन जाती हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. मीरा के समय के सामाजिक ढाँचे का विश्लेषण कीजिए।
2. मीरा के काव्य से स्त्री के प्रश्न को किस रूप में समझा जा सकता है, स्पष्ट कीजिए।
3. आर्थिक दृष्टि से मीरा के समय को समझाते हुए उसकी राजनीतिक परिणति को स्पष्ट कीजिए।
4. मीरा के व्यक्तित्व का निर्माण उनके समय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में होता है, कथन की विवेचना कीजिए।
5. मीरा की भक्ति भावना का एक स्रोत उनके समय की दार्शनिक भावभूमि में मिलता है, स्पष्ट कीजिए।
6. मीरा के युग के साहित्य एवं संगीत की परम्पराओं का उल्लेख संक्षेप में कीजिए।

इकाई 3 गुजरात के लोक जीवन में मीरा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गुजरात में भक्ति आंदोलन

3.3 गुजरात के भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवि

3.4 मीरा का गुजरात में आगमन

3.5 मध्य-कालीन गुजरात की अन्य कवयित्रियाँ

3.6 गुजरात की भक्त कवयित्रियों की सामाजिक स्वीकृति

3.7 मीरा का गुजरात के भक्त कवियों के साथ परिचय-संबंध

3.8 गुजरात में आज मीरा

3.8.1 गुजराती समाज की मान्यता

3.8.2 साक्षरों का मंतव्य

3.9 सारांश

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिंदी के कविता केन्द्रित वैकल्पिक पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में हम गुजरात में मीरा के विषय में पढ़ने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- गुजरात के भक्ति काल के बारे में जान सकेंगे;
- आप यह भी जान सकेंगे कि मीरा जब गुजरात में आईं तब यहाँ उनके अलावा और कितनी भक्त कवयित्रियाँ थीं। साथ ही, उनकी सामाजिक स्वीकृति के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- मीरा, गुजरात में जिंन–जिन भक्त कवियों से मिली थीं, उसके संदर्भ में जान सकेंगे;
- आप यह भी जान सकेंगे कि आज मीरा लोक-मानस में कितना स्थान पाए हुए है; और
- मीरा के विषय में आज के कवियों तथा विद्वानों के मंतव्यों को भी जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

समग्र भारत में तथा भारतीय साहित्य में मध्य-काल के भक्त कवियों के अध्ययन ने हमें इस तथ्य से अवगत करा दिया है कि भारतीय एकता मुख्यतः उसकी विचारगत एवं चेतनागत एकता ही है। तभी भक्ति काल के अनेक ऐसे कवि हमें मिल जाएँगे जिन्होंने भारत-भ्रमण किया है और जो एकाधिक भाषा में कविता रचना करते थे। चाहे सगुण उपासक कवि हों जैसे-गुजरात के कृष्ण-भक्त कवि दयाराम या पूर्वोत्तर के ब्रज-बुलि में लिखने वाले कवि हों अथवा निर्गुण कवि जैसे कबीर, नानक आदि - सभी ने भाषा के भेद को एक तरफ ठेल कर चेतना तथा विचार एवं भाव की एकता पर बल दिया। इंसी का परिणाम है कि आज जब हम भक्तिकाल की बात करते हैं तब किसी एक भाषा अथवा किसी एक प्रदेश की एकल चर्चा नहीं कर सकते। इसका एक कारण है। ऐसा करने से हम बात को उसकी समग्रता में नहीं पहचान सकेंगे। दूसरा कारण यह भी है कि जब हम समग्रता से अध्ययन करते हैं तो तुलनात्मक दृष्टि से हम यह बेहतर तरीके से जान सकते हैं कि उस समय विविध प्रांतों तथा उनकी भाषाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियाँ उस समय के कवियों के लिए कितनी उपयोगी अथवा बाधक रही होंगी।

आज जब स्त्री विमर्श का सर्वत्र बोलबाला है, ऐसे में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि मीरा जैसी मध्य-काल की कवयित्रियों का अध्ययन करें। संभवतः यह अध्ययन हमें इस तथ्य की ओर सोचने की दिशा में ले जाएगा कि जो प्रांत आज स्त्रियों के मामले में जितने पिछड़े अथवा संकीर्ण हैं, भूतकाल में उनका रवैया कैसा था। यह तथ्य भी सर्व विदित है कि आज अन्य प्रांतों की अपेक्षा गुजरात में स्त्रियाँ अधिक सुरक्षित हैं। क्या मीरा का गुजरात में जाना इस बात का संकेत माना जा सकता है कि उस समय से गुजरात की यह ख्याति रही थी? धर्म का भारतीय जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म में स्त्री का स्थान क्या भारत में सर्वत्र एक जैसा था या फिर भिन्न सामाजिक स्थितियों के कारण उसमें भी भिन्नता देखी जा सकती है। यह और ऐसे कुछ बिन्दु हैं जिन पर सोचना हमारे लिए आज महत्वपूर्ण हो गया है।

गुजरात की पहचान यों भी एक धर्म-भीरु प्रांत के रूप में रही है। अतः मीरा के माध्यम से हमें इस इकाई में गुजरात के उस रूप एवं उसकी परंपरा के विषय में जानकारी मिल सकेगी।

3.2 गुजरात में भक्ति आंदोलन

गुजरात प्रदेश एक ओर हिंदी प्रदेश से जुड़ा है और दूसरी ओर महाराष्ट्र से। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से पंद्रहवीं शताब्दी तक गुजरात, मालवा, मारवाड़, और राजस्थान का एक सीमांत ही था। गुजरात में आकर भक्ति आंदोलन के अध्ययन में एक नया आयाम जुड़ता है-जैन धर्म का प्रभाव। इसीलिए यहाँ भागवत् धर्म के प्राचीन चिह्न मिलने पर भी काव्य रचना पहले की नहीं मिलती। ग्यारहवीं शताब्दी के बाद दक्षिण में जिन भक्ति-सम्प्रदायों का उदय हुआ उनका प्रभाव गुजरात पर पंद्रहवीं शताब्दी तक नहीं दिखाई पड़ता। जैन प्रभाव होने के कारण कृष्ण-कथा के जैन रूपांतर भी मिलते हैं। रचनाओं में कृष्ण केवल गोकुल तक सीमित नहीं हैं। यहाँ उनका राजसी वैभव और विवाहित जीवन प्रमुख है। केवल नरसी और मीरा ही रागानुरागी भक्ति से जुड़े हैं।

महाराष्ट्र की दो परंपराएँ गुजरात में भी मिलती हैं। पहली गुजराती कवियों की हिंदी में रचना करने की प्रवृत्ति और दूसरी सगुण-निर्गुण भावना का संश्लेषण। वस्तुतः भाषिक इकाई के रूप में गुजराती भाषा पंद्रहवीं शताब्दी के बाद ही स्वतंत्र स्थिति प्राप्त करती है।

उससे पूर्व का साहित्य राजस्थानी और हिंदी की साँझा संपत्ति है। गुजराती में संत काव्य का प्राचुर्य रहा परंतु यह कहीं भी सगुण काव्य के विरोध में खड़ा नहीं होता। एक ही कवि दोनों प्रकार की रचनाएँ करता है। संतों की प्रतीक पद्धति भी बहुत कुछ समान रही।

गुजरात का मध्य काल विशिष्ट रहा है। इसकी समय सीमा लगभग सन् 1450 से 1850 ईस्वी तक की मानी गई है। चूँकि भाषाई दृष्टि से गुजराती का स्वतंत्र अस्तित्व, अन्य भाषाओं की तुलना में कुछ बाद में प्रकट हुआ, अतः यह स्वाभाविक ही था कि गुजराती के अपने स्वतंत्र साहित्य का आरंभ भी वहाँ देर से ही हुआ। लंबे समय तक नरसी मेहता का नाम गुजराती के प्रथम कवि के रूप में स्वीकृत रहा। परन्तु बाद की खोजों से पता चला कि उनके पहले भी वहाँ कुछ कवि मिलते हैं। पर यह इस समय हमारे अध्ययन का विषय नहीं है। गुजराती का मध्य-काल बहुधा धर्म प्रधान अथवा धर्म-मूलक रहा है। पर वहाँ केवल वैष्णव प्रभाव का प्राधान्य नहीं था। वहाँ शैव परंपरा, जैन परंपरा, ज्ञानमार्गी परंपरा, पारसी साहित्य-या कहें कि पारसी कवियों द्वारा पारसी कथानकों एवं आख्यानों वाला, गुजराती भाषा में लिखा साहित्य भी मिलता है। मुस्लिम तथा ईसाइयों द्वारा लिखे साहित्य का उल्लेख भी मध्य-काल के इतिहासकारों ने किया है। इसी काल में गुजरात में लोक-साहित्य भी विपुल मात्रा में मिलता है जिसका उल्लेख इतिहास ग्रंथों में मिलता है। "रणमलछन्द" तथा "कान्हडदेप्रबंध" आदि अपवादों को छोड़ दें तो लगभग गुजराती का मध्य-कालीन साहित्य राज्याश्रित नहीं रहा। जिस साहित्य में चित्रकला का प्राधान्य था अथवा जो चित्रकलाश्रित साहित्यिक रचनाएँ थीं, विशेषतः जैन साहित्य, वह अवश्य ही धनिकाश्रित रहीं। इसके अलावा शेष साहित्य-जो विपुल मात्रा में है, वह जनता के बीच से ही पनपा। जनता में और जनता द्वारा ही पोषित हुआ। यही कारण है कि अन्य भाषाओं में इस समय में जैसे काव्य-शास्त्र के ग्रंथ रचे गए वैसे गुजरात में नहीं रचे गए। मीरा, अखा, दयाराम जैसे रचनाकार अगर द्वि-भाषी रचनाकार थे, तो महामति प्राणनाथ जैसे त्रि-भाषा रचनाकार भी गुजरात में ही हुए। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि महामति प्राणनाथ वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। वे हिंदी, गुजराती, सिंधी तथा अरबी भाषाएँ भी जानते थे। उनका "कुलजमस्वरूप" हिंदू धर्म के साथ-साथ कुरान एवं बाईबिल के आदर्शों को प्रकट करने वाला ग्रंथ था। गुजरात के मध्य काल को पढ़ कर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि गुजरात में एक प्रकार की भाषिक तथा धार्मिक उदारता रही है। तभी हिंदी से गहरा रचनात्मक संबंध रखने वाले दयाराम, प्राणनाथ जैसे कवि और दयानंद सरस्वती, गाँधीजी जैसी विभूतियाँ वहाँ जन्म लेती हैं; मीरा तथा सहजानंद स्वामी जैसे संतों ने गुजरात को अपना आश्रय-स्थल अथवा कर्मभूमि स्वीकार किया।

गुजरात के मध्य-काल का जो विवेचन किया गया है - उनमें, यहाँ तक कि इतिहास-ग्रंथों में भी इस बात पर अधिक ज़ोर दिया है कि इस दौरान कौन-कौन से काव्य-रूप प्रमुख रहे। भक्ति-धारा का विवेचन बाद में है, काव्य-रूपों का पहले। भोगीलाल सांडेसरा के अनुसार इन काव्य-रूपों का विवेचन इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनका संबंध कहीं-न-कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धर्मों के साथ जुड़ा है। पद स्वरूप में शैव, वैष्णव, जैन आदि सभी धर्मों से जुड़ी रचनाएँ मिलती हैं। गरबा एवं गरबी मुख्य रूप से देवी उपासना के लिए अथवा राधा-कृष्ण की भक्ति से जुड़ा काव्य-रूप है। 'आख्यान' जहाँ वैष्णव भक्ति से संबंधित है, वहीं 'रास' जैन धर्म से संबंधित है। आख्यानों में जिस तरह धर्म कथाओं का प्राधान्य रहता है उस तरह 'कथावार्ता' स्वरूप, सामाजिक कथाओं से संबद्ध माना गया है। 'फागु' का संबंध वसंत वर्णन से है तो 'वीर-काव्यों' का संबंध राजाओं की वीरता से है। ज्ञानमूलक खंड काव्य आध्यात्मिक रचनाओं से संबद्ध है। ये मुख्यतः ज्ञानमार्गी बहुल रचनाओं से संबंध रखती हैं। इन प्रमुख रूपों के अलावा अन्य प्रचलित रूपों में सलोक, छन्द

और चर्चरी भी प्रचलन में थे। सलोक संस्कृत के श्लोक का ही रूपांतर है, इसमें ऐतिहासिक व्यक्ति से जुड़े प्रसंग को लेकर पद्य-बद्ध शौर्य-स्तुति करना इसका मुख्य विषय रहा है। छन्द में मुख्यतः देव-स्तुति गई जाती थी और चर्चरी उत्सव-गीतों के लिए प्रयुक्त होता था। इस तरह हम देख सकते हैं कि गुजराती मध्य-काल में काव्य-रूपों का विशेष महत्व था।

3.3 गुजरात के भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवि

गुजरात के भक्ति-आंदोलन में कई धाराएँ रहीं अतः उनके भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवियों की बात करने के पूर्व उसका एक खाका हमें समझ लेना पड़ेगा।

गुजराती के भक्ति काल में जैन साहित्य तीन खंडों में विभाजित है। पहला-ईस्वी सन् 1450-1600 तक तथा दूसरा ईस्वी सन् 1601-1750 । इसके बाद जैन साहित्य का तीसरा दौर आता है जो 1750 से 1850 तक फैला है। जैन साहित्य के पहले और दूसरे दौर के बीच नरसी (1414-1480 ई. सन्) और मीरा (1498-1556 अथवा 1563-1565) आ जाते हैं। साथ में भालण (पंद्रहवीं सदी का उत्तरार्द्ध और सोलहवीं सदी का पूर्वार्द्ध) तथा आरंभिक भक्तिकाव्य के अन्य कवि। यानी मीरा के गुजरात में आने से पहले तक गुजराती भक्ति काव्य, लोक में व्याप्त और पुष्ट हो चुका था।

इनके बाद हैं नाकर (ईसा की सोलहवीं सदी), अखा (ईसा की सत्रहवीं सदी का पूर्वार्द्ध), और प्रेमानंद (ईसा की सत्रहवीं सदी का उत्तरार्द्ध)। इसी दौरान उत्तर भक्ति काल के दयाराम (1777-1853 ईस्वी सन्) और स्वामीनारायण संप्रदाय के कवियों के नामों का उल्लेख आता है। यही समय महामति प्राणनाथ का भी है। इसी समय में कुछ पारसी और मुस्लिम कवियों का उल्लेख भी मिलता है। इसी के साथ-साथ गुजराती का लोक काव्य तो प्रचलन में था ही।

गुजराती इतिहास के ग्रंथों में इसी बीच भक्ति से इतर रचनाओं में फागु और वीर काव्यों का भी उल्लेख किया गया है। लेकिन इनमें फागु का संबंध जैनेतर और जैन दोनों से जुड़ा है। गुजरात के मध्य काल की चर्चा करते हुए इतिहासकारों ने इसके विभाजन में धर्म के साथ-साथ विषय को भी ध्यान में रखा है। जैसे वे जैन काव्य की चर्चा करते हैं तो फागु की अलग से करते हैं। फागु-अर्थात् वसंत काव्य-जो अपनी प्रकृति में शृंगारिक भी है, और धार्मिक भी।

गुजराती भक्ति कविता में जिन मुस्लिम कवियों के नाम आते हैं उनमें मुख्य रूप से राजे (ई. स. 1650 - ई.स. 1720), मीठा ढाढी, नूर सतागर तथा पीर सदरुद्दीन, रतन बाई, के नाम लिए जा सकते हैं। इसी के साथ ईसवी सन् 1817 के आसपास रैवरंड फैवी तथा रैवरंड स्कीनर इन दो ईसाई पादरियों के नाम आते हैं, जिन्होंने बाईबिल के कुछ अंशों का अनुवाद किया।

कहने का तात्पर्य यह है कि गुजराती का मध्य काल वैविध्य पूर्ण रहा है। पर एक अन्तर यह है कि जिस तरह हिन्दी के मध्य काल में रीति काल था - जो हिंदी काव्य-शास्त्र के विकास को दर्शाता है वैसी प्रवृत्ति गुजराती में नहीं पाई जाती। किंचित् वीर, विपुल शृंगार, व्यापक भक्ति हिंदी तथा गुजराती में अगर समान है तो लोक-साहित्य की विपुलता, पारसी तथा मुस्लिम कवियों की उपस्थिति, ईसाई अनूदित साहित्य का आरंभ तथा स्त्री कवयित्रियों की भूमिका गुजराती मध्य काल की विशेषता मानी जा सकती है।

3.4 मीरा का गुजरात में आगमन

मीराबाई के गुजरात आगमन के जो कारण दिए जाते हैं उनमें उस समय की चितौड़ की राजनैतिक परिस्थितियाँ बहुत जिम्मेदार रही होनी चाहिए। मीराबाई का विवाह सन् 1516 ईस्वी में हुआ और सन् 1518 ईस्वी में इब्राहिम लोदी और राणा सांगा के बीच हुए घटोली के युद्ध में भोजराज बुरी तरह ज़ख़्मी हुए। इसके बाद सन् 1521 ईस्वी में ही उनकी मृत्यु हो गई। संभवतः ज़ख्म बहुत गहरे रहे होंगे। मध्य-काल में पति की मृत्यु के बाद स्त्री का सती होना एक सामान्य बात थी। परन्तु कहते हैं कि चूँकि मीरा ने अपने विवाह की रस्म को पूरा होने में आनाकानी की था अतः नियम से उसे सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों में मीरा की कोई-न-कोई भूमिका रही होगी (विशेष रूप से जोधपुर वालों के विद्रोह को लेकर), अतः राणा सांगा के जीवन-काल तक तो मीरा को किसी प्रकार के संकटों का सामना नहीं करना पड़ा।

सन् 1521 ईस्वी से सन् 1527 ईस्वी के बीच का समय मीरा के लिए सर्वाधिक सुख-शान्ति का माना गया। इस समय में उनका अभ्यास बढ़ा, उन्हें प्रौढ़ी प्राप्त हुई और उन्होंने काव्य-रचनाएँ भी की। भोजराज की विधवा होने के नाते वे अत्यन्त गौरवभरा जीवन जी रही थीं। साधु-वैरागियों को दान आदि देना, धर्म-चर्चाएँ सुनना धार्मिक तथा भक्ति पदों की रचना आदि में वे व्यस्त रहती थीं।

परन्तु रतनसिंह के गद्दी पर बैठते ही स्थितियाँ बदल गईं। मीरा की यातनाओं का आरंभ भी तभी से हुआ माना जाता है। उन्हें मार डालने के अनेक प्रयास किए गए। मीराबाई के चाचा वीरमदेव उन्हें अपने साथ ले गए। परन्तु वे भी उनकी क्रांतिकारी भक्ति से सहमत तो नहीं थे। लेकिन उनका चचेरा भाई जयमल उनके समर्थन में था। लेकिन बाद में मीरा यात्रा पर निकल पड़ीं और पहले उत्तर प्रदेश फिर मेड़ता होते हुए सौराष्ट्र की तरफ प्रयाण किया। वहाँ से सन् 1537 ईस्वी के आसपास वे द्वारिका की तरफ गईं। मीरा जब द्वारिका आईं तब वहाँ का कृष्ण मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। मीरा जितना समय द्वारिका रहीं उस दौरान ही संभवत उन्हीं की प्रेरणा से द्वारिका के मंदिर का पुनर्निमाण हुआ होगा। वहाँ के निम्न वर्ग के समाज के जीवन में सुधार लाने के लिए उन्होंने एक पादरी की तरह प्रचार का काम किया। सन् 1530 ईस्वी से सन् 1546 ईस्वी के बीच मीरा ने सोरठी पद और गरबा की रचना की।

भक्तिकाल में प्रायः कृष्ण-भक्त कवि मथुरा अधिक जाते थे, द्वारिका कम। राणा संग्रामसिंह की माता चितौड़गढ़ की झाली रानी रतनकुँवर, रैदास की शिष्या थीं। उनके द्वारा मीरा को गुजरात के बारे में तथा नरसी मेहता के विषय में भी पता चला होगा। झाली रानी उनकी चितौड़ में रक्षक भी रही थीं। साथ ही चूँकि मीराबाई रैदास की शिष्या थीं (ऐसी एक मान्यता है) अतः उनके माध्यम से कवि नरसिंह मेहता के विषय में भी जानकारी मिली हो सकती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मीरा ने एक लंबा समय साधु-संगत में बिताया था, अतः अपने आस-पास और दूर-दराज़ की घटनाओं का उन्हें पता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। नरसी मेहता का उन पर प्रभाव था, और नरसीजी के मायरे के बारे में भी वे जानती थीं, ऐसा उनके पदों से पता चलता है। नरसी मेहता की बहुत सारी रचनाएँ आत्मकथनात्मक हैं, मीरा की भी बहुत सारी रचनाएँ आत्मकथानात्मक हैं; उसे केवल योगानुयोग न मान कर हम इसे मीरा पर नरसी के प्रभाव के रूप में देख सकते हैं।

मथुरा की तुलना में द्वारिका चुनने के जो कारण विद्वानों ने दिए हैं, वे कुछ इस तरह के हैं -

- मीरा एक राजकुँवरी थीं और स्वाभाविक ही उन्होंने उत्तम शिक्षा पाई होगी। उन्हें महाभारत और भागवत् का परिचय होगा।
- भगवद्–गीता में परमात्म-प्रेम और आत्म-समर्पण के साथ-साथ धृति और कर्तव्य-पालन के उपदेश को मीरा जानती होगी।
- मीरा को गीता का तत्व-ज्ञान प्रभावित कर गया होगा, द्वारका-गमन का यही कारण सबसे प्रमुख रहा होगा।

हमने गुजरात के भक्ति-काल के विषय में पढ़ते हुए जाना कि गुजरात का मध्य-काल एक प्रकार के धार्मिक सौहार्द्र की भावना से युक्त था। चित्तौड़ में मीरा को जिन राजनीतिक षड्यंत्रों का शिकार बनना पड़ा और जिन संघर्षपूर्ण स्थितियों में रहने के लिए वे बाध्य थीं, उनकी तुलना में मेड़ता तथा चित्तौड़ से दूर द्वारिका जैसी कृष्ण-भूमि उन्हें अधिक अनुकूल रही होगी। फिर गुजरात में साहित्य जनता द्वारा पोषित था, अतः मीरा के भक्ति-पदों का आम जनता के बीच स्वागत ही हुआ होगा। मीरा जितना समय गुजरात में रहीं, उन्होंने सामान्य जनता के जीवन को बेहतर बनाने की कोशिश की। भक्ति गरबे रचे, उन्हें लोगों के बीच सुनाया, सिखाया और उनको गाने में लोगों का नेतृत्व भी किया होगा। मीरा के गुजरात में बिताए पूरे जीवन से पता चलता है कि उन्हें ज़बरदस्त लोक-समर्थन प्राप्त था। शायद यही लोक-समर्थन उन्हें चित्तौड़ में भी प्राप्त रहा होगा। यही कारण है कि जितनी भी बार उनको मरवा डालने के षड्यन्त्र रचे गए, लोक-समर्थन के कारण वे सफल नहीं हो सके।

मीरा के गुजरात आगमन के पहले मीरा के बारे में जो जानकारी विद्वानों ने दी है, वह वही है, जो हिन्दी-साहित्य और आलोचना में मीरा के बारे में हमें मिलती है। गुजरात आगमन के बाद सिवा इन दो तथ्यों के, कि वे द्वारका में रहीं और चित्तौड़ से जब ब्राह्मण उन्हें वापस ले जाने के लिए आए तब वे वहाँ से कहीं और के लिए चल दीं - और कोई ऐसा ऐतिहासिक तथ्य मिलता नहीं है, जिसके सहारे हम उनके गुजरात-वास के संबंध में कुछ कह सकें। मीरा कृष्ण की मूर्ति में समा गईं, इस तथ्य से गुजरात के विद्वान सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि चित्तौड़ दुबारा लौटने की अपेक्षा उन्होंने द्वारिका छोड़ने का निर्णय लिया। वे वहाँ से अदृश्य हो कर पूर्व-भारत अथवा दक्षिण-भारत गईं, फिर वहाँ से उत्तर की ओर चली गईं थी, क्योंकि आगे चलकर बादशाह अक़बर तथा गोस्वामी तुलसीदास के साथ उनकी भेंट हुई, ऐसे संदर्भ इतिहास में मिलते हैं।

लोगों की दृष्टि में मेवाड़ के पतन का कारण मीरा को दिए गए दुख और उन पर किए गए अत्याचार ही थे। इस विषय में आप खंड की पहली इकाई में पढ़ चुके हैं जब तक वे चित्तौड़ में रहीं, तब तक शायद इस बात पर एक प्रतिशत भी संदेह किया जा सकता है कि वे केवल भजन रचती थीं और भक्त थीं। परन्तु द्वारिका आने के बाद यह बात मानो सिद्ध हो गई कि वे एक उच्च कोटि की धर्मोपदेशक थीं। अतः विक्रमजित् की मृत्यु के बाद तत्कालीन शासकों के लिए मीरा को वापस चित्तौड़ बुला लेना आवश्यक था।

इस संदर्भ में डॉ. गेत्स का मानना है - "ईस्वी सन् 1546 में विक्रमजित् के बाद उसका छोटा भाई उदैसिंह गद्दी पर बैठा तब उसने मीरा को चित्तौड़ वापस बुलाने के लिए आग्रह भरी विनंति के साथ ब्राह्मणों की एक मंडली को द्वारिका रवाना किया। मीरा ने जब लौटने से इन्कार कर दिया तब उन्होंने उपवास का सहारा लिया। मीरा भगवान की अनुज्ञा लेने मंदिर में गईं और अदृश्य हो गईं। दूसरे दिन जब मंदिर का किवाड़ खोला गया तब मीरा का वस्त्र मूर्ति के हाथ में था और यह मान लिया गया कि गोपी-भाव कृष्ण को पूजने वाली मीरा को कृष्ण ने अपनी मूर्ति में समो लिया। इसी को मीरा का अवसान मान लिया गया।"

संभवतः राज-कोप अथवा अपनी असफलता से बचने के लिए यह बात ब्राह्मण अपने साथ चित्तौड़ ले गए। पर डॉ. गेत्स का मानना है कि "अगर गहराई से सोचें तो यह कहा जा सकता है कि मीरा ने भेष बदल कर द्वारिका का त्याग किया। जगत के प्रति संपूर्ण वीतराग की भावना के फलस्वरूप, सत्य के अधिकाधिक निकट जाने हेतु, निर्विघ्न प्रभु-भक्ति हो सके इस हेतु अपने सामाजिक व्यक्तित्व को विलुप्त कर के अदृश्य हो जाने का निर्णय मीरा ने लिया होना चाहिए"।

हालाँकि मीरा के समय राजनैतिक आश्रय (पोलीटिकल असायलम) जैसी कोई परिकल्पना नहीं थी परंतु हम कह सकते हैं कि जैसे आज राजनीतिक उठा-पठक एवं संत्रास से बंग्ला देश की तसलीमा नसरीन को अपना देश छोड़ना पड़ा उसी तरह उस समय की मीरा को अपना चित्तौड़ छोड़ कर द्वारिका आना पड़ा होगा।

3.5 मध्य-कालीन गुजरात की अन्य कवयित्रियाँ

गुजरात में मीरा के पहले कोई भक्त कवयित्री के होने का इतिहास में कोई उल्लेख नहीं मिलता। भक्त कवयित्री के अलावा भी किसी अन्य धारा की कवयित्री का उल्लेख नहीं मिलता। परंतु मीरा के बाद 1850 के पूर्व कुछ नाम अवश्य मिलते हैं। इनमें सबसे पहले कनकावती आख्यान (1588) की रचयिता जैन कवयित्री साध्वीश्री हेमश्री का नाम मिलता है। वे साधु कवि नयसुंदर की शिष्या थीं। कनकावती नामक रचना 367 कडवों में रची गई है। इसके बाद और किसी जैन कवयित्री का नाम नहीं मिलता। इसके अलावा लोयण नाम की एक लोक कवयित्री की भी जानकारी मिलती है जो मीरा के पहले हुई हैं, ऐसा कहा जाता है किंतु इस बात का कोई आधार नहीं है। जैसा कि हमने कहा है मुस्लिम कवयित्री रतन बाई भी हुई है जो पीर क़ायमुद्दीन बाबा चिश्ती के पंथ की अनुयायी थीं। उनकी कविता पर मीराबाई के भजनों की छाप दिखाई पड़ती है -***बाई रतन को मुरशद मिले, वही हमारे नाथ रे।***

इनके अलावा एक नानीबाई नामक कवयित्री का भी उल्लेख अनंतराय रावळ ने किया है। लेकिन इन सभी कवयित्रियों का बहुत अधिक उल्लेख हमें नहीं मिलता। मीराबाई के बाद जिन भक्त स्त्री कवयित्रियों का उल्लेख मिलता है उनमें प्रमुख हैं -गवरीबाई (1759-1809 ई. श), दिवाळीबाई (1791-), कृष्णाबाई (अठारहवीं सदी), पुरीबाई (अठारहवीं सदी), राधाबाई, वणारसीबाई, इन्द्रावती (अठारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध), गंगा सती (1843-1894), सती लोयण, सती तोरल, सती रूपांदे, सती देवलदे, सती नीरलबाई, अमरबाई आयर, मागलबाई, संत रामबाई आदि।

इनमें गवरीबाई ज्ञानमार्गी कवयित्री थीं और उनकी कविताओं का विशेष महत्व भी है। दिवाळीबेन और कृष्णाबाई राम भक्त कवयित्री थीं। इन्द्रावती प्रणामी संप्रदाय की थीं। गंगासती तथा अन्य सती कवयित्रियाँ संत मार्गी थीं। वे संसारी थीं और संतों तथा साधुओं के बीच अपना बहुत सारा समय व्यतीत करती थीं।

ये सभी कवयित्रियाँ उच्च कुल की नागर ब्राह्मण भी थीं और निम्न जाति की भी थीं। इससे पता चलता है कि मीरा के पहले नहीं, तो, कम-से-कम मीरा के बाद गुजरात में अनके स्त्री कवयित्रियाँ हुईं जिनका उल्लेख इतिहास में मिलता है। इसमें वैविध्य भी है। जैन, वैष्णव, ज्ञानमार्गी, प्रणामी तथा संत धारा में लिखने वाली इन कवयित्रियों ने गुजराती के भक्तिकाल में अपना योगदान दिया है।

3.6 गुजरात की भक्त कवयित्रियों की सामाजिक स्वीकृति

मीरा पर लिखे अपने लेख में डॉ. गेत्स का कहना है कि आम जनता की सामान्य स्त्रियों के साथ मीरा का मेल-जोल हो गया था। वह अपने रचे हुए पद उन्हें सिखाती थी। इस तरह उनकी मानसिक परवशता दूर करके उनमें जागृति लाने का काम कर रही थी। इससे श्रीमंत एवं खानदानी परिवारों को काफ़ी आघात लगा होगा और यह संभव है कि उनके द्वारा मीरा की निंदा हुई हो। डॉ. गेत्स के इस कथन से यह स्पष्ट लगता है कि उनके पास इसका कोई आधार तो नहीं है परंतु उनका ऐसा अनुमान है। मीरा की गुजरात में उस समय भी निंदा हुई हो, ऐसा कोई प्रमाण मिलता नहीं है।

साध्वी हेमश्री तो जैन धर्म में दीक्षित थीं और इन्द्रावती भी प्रणामी संप्रदाय में दीक्षित थीं, अतः उनकी तो समाज में स्वीकृति थी ही। इसके अलावा अन्य जो कवयित्रियाँ है उनमें सती कवयित्रियाँ संसार में रह कर रचना और भक्ति करती थीं। समाज ने कभी भी उनकी निंदा की हो अथवा उन्हें परेशान किया हो ऐसा कोई उल्लेख मिलता नहीं है। इन सभी कवयित्रियों के परिचय में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि इन्होंने किसी-न-किसी का शिष्यत्व ग्रहण किया था। शिष्यत्व ग्रहण करना तो स्त्री नहीं, पुरुष भक्त कवियों की भी विशेषता रही है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि गुजरात में भक्ति काल की कवयित्रियों को सामाजिक स्वीकृति मिली थी। उन्हें भगवत् भक्ति के लिए एक स्थान मिला था।

3.7 मीरा का गुजरात के भक्त कवियों के साथ परिचय-संबंध

गुजराती मध्य-काल के इतिहास में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि मीरा के गुजरात वास के दौरान उनका किसी जाने-माने गुजराती कवि से परिचय हुआ था। नरसी का समय मीरा के पहले का है। नरसी की मृत्यु ईस्वी सन् 1480 में बताई जाती है और मीरा का द्वारिका आगमन सन् 1537 ईस्वी में बताया गया है। यानी कि नरसी की मृत्यु के 57 वर्षों बाद मीरा गुजरात में आती हैं, ऐसा इतिहास में स्वीकृत तारीखों से पता चलता है। मीरा जब गुजरात में थीं तब यहाँ भालण का समय था। भालण का समय पंद्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध तथा सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है। लेकिन भालण उत्तर गुजरात पाटण के रहने वाले थे और मीरा तो सौराष्ट्र में थीं। फिर अब तक की खोजों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि मीरा गुजरात में रहते हुए किसी कवि या रचनाकार से मिली थीं।

3.8 गुजरात में आज मीरा

3.8.1 गुजराती समाज की मान्यता

इस बात में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि अगर हम डॉ. गेत्स की इस बात को स्वीकार करें कि मीरा द्वारिका से चुपचाप निकल कर कहीं और के लिए चल दी थीं, तो हमें यह मानना ही होगा कि मीरा का उस समय की सामान्य जनता से बड़ा गाढ़ा संबंध रहा होगा। ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि मीरा का उस समय के शासकों, या सेठ-साहूकारों या कवि साक्षरों से परिचय था। जैसा कि डॉ. गेत्स ने उल्लेख किया है कि मीरा का संबंध वहाँ की सामान्य जनता के साथ अवश्य था। उनकी ही प्रेरणा से वहाँ के मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ होगा। यानी मीरा के प्रति वहाँ के लोगों की एक सकारात्मक राय थी। आज भी मीरा का स्थान सामान्य जनता में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है और उसने उस

समय जो भक्ति और साहस दिखाया उसके प्रति आज के गुजरात में सामान्य नारी तथा शिक्षित नारी - दोनों ही आदर की दृष्टि रखते हैं।

3.8.2 साक्षरों का मंतव्य

गुजराती साहित्य के इतिहास में मीरा का बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। डॉ. गेत्स की इस मान्यता का प्रभाव गुजराती साक्षरों पर बहुत गहरा है कि - मनुष्य जाति में पैदा हुए सबसे महान व्यक्तियों में मीरा का स्थान आता है। मीरा को एक सामान्य मध्य-वर्गीय व्यक्ति की तरह चित्रित करने का इतिहासकारों का उपक्रम डॉ. गेत्स की खोजों के बाद बदलती है। गुजरात में डॉ. गेत्स के मत को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। आज भी इतिहासकारों तथा समीक्षकों की मान्यता के अनुसार मीरा एक उत्तम भक्त कवयित्री है, जो स्वयं पढ़ी-लिखी और जाग्रत थी। मीरा की सबसे बड़ी बात यही है कि उन्होंने नकार, निंदा के स्थान पर अपनी टेक को अधिक महत्व दिया । धार्मिक मत-मतांतरों वाले समाज में रह कर पक्षापक्षी में न पड़कर अपनी बात ही केवल करना, बहुत बड़ी बात है। मीरा की इस विशेषता को साक्षरों ने महत्वपूर्ण माना है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार दर्शक का कहना है –

"नाथसंप्रदाय में सांत्रिक, शाक्त, शैव, वज्रयानी आदि का समावेश था। आर्यवंशी राजपूतों के लिए यह संप्रदाय त्याज्य माना गया इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। जिस समय समग्र हिंदू धर्म को एक होने की आवश्यकता थी तब ये नाथपंथी तथा निर्गुण लोगों में भेद-बुद्धि फैला रहे थे। ये लोग ब्राह्मण, वेद तथा हिंदू धर्म की नींव गिने जाने वाले ग्रंथों पर समय-असमय कुठाराघात कर रहे थे तथा उसे निर्बल बना रहे थे। इन्हीं नाथपंथियों में से कई मुसलमान भी बने-यह भी हम जानते हैं।

ऐसे ही नाथपंथियों के साथ मीरा का उठना-बैठना था। हिंद के सूरज में यह धब्बे के समान था। तुर्कों के अत्याचार से पीड़ित सामान्य हिंदू प्रजा के लिए जो शिरोमणि के समान था, ऐसा सिसोदिया वंश अगर मीरा को इस दृष्टि से कुलनासी कह कर उस पर अत्याचार करे तो इसमें आश्चर्य में डालने वाली कोई बात नहीं होनी चाहिए। मीरा ने किसी नाथ-पंथी जोगी को संबोधित कर के विरह-व्याकुलता के भाव से भरे पदों की रचना की जिनके कारण, उन्हें सामान्य विधवा को जो सहने पड़ते होंगे वैसे दुखों को सहना पड़ा होगा।

मीरा एक प्रयोग वीर साधिका है। उसे तो हरि-मिलन की आस है। इस मार्ग पर जो भी कोई जा रहा हो मीरा उसके साथ चलने के लिए तत्पर थीं। हरि चाहे मोती की माला पहनने से मिलें, तो इसके लिए भी वे तैयार थीं और अगर भभूत मलने से मिले, तो भी उन्हें कबूल था।" दर्शक के इस मत में यह संकेत मिलता है कि मीरा के किसी नाथपंथी साधु के साथ संबंध होने की बात को वे महत्व देते हैं। चाहे फिर उसका तात्पर्य जो हो। लेकिन उनके इस विचार में दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली यह कि मीरा के साथ इस प्रकार के अपवाद जुड़े होने की संभावना। दूसरी, कि हरि-मिलन के अपने लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए मीरा किसी भी हद तक जाने को तैयार थीं।

3.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप गुजरात में मीरा को समझने की एक भूमिका की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। मीरा के गुजरात आगमन के पूर्व स्वयं गुजरात में भक्ति की एक वैविध्य पूर्ण एवं उदार स्थिति मौजूद थी। उस समय वहाँ वैष्णवों के अलावा शैव, जैन, तथा ज्ञानमार्गी संत परंपरा तो थी ही। लेकिन गुजरात में धार्मिक संघर्षों का वैसा स्वरूप

दिखाई नहीं पड़ता जैसा उत्तर भारत में उस समय था। धार्मिक मत-वैभिन्य व्यक्तिगत विरोध का कारण बन सकता था, परंतु सामाजिक संघर्ष और विद्वेष का नहीं। हमने यह भी देखा कि देश के अन्य हिस्सों की अपेक्षा गुजरात में वैष्णव-भक्ति देर से आई। भक्तिकाल में नरसी मेहता के पहले जैन काव्य उपलब्ध थे पर उसे हम धार्मिक कविता अवश्य कह सकते हैं; उस अर्थ में भक्ति काव्य नहीं जैसी नरसी और मीरा की कविता को हम भक्ति काव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। गुजरात के भक्तिकाल में नरसी से दयाराम के बीच मीराबाई, नाकर भालण, प्रेमानंद तथा अनेक लोक कवि हुए हैं और उन्होंने विभिन्न काव्य रूपों में अपनी रचनाएँ कीं।

मीरा के गुजरात आगमन के लिए यह भूमि बहुत अनुकूल थी। यहाँ उनकी भेंट किसी नामांकित कवि से हुई हो ऐसा कोई संदर्भ तो नहीं मिलता; न ही ऐसा कोई संदर्भ हमें मिलता है कि मीरा के पहले यहाँ कोई स्त्री कवयित्री हुई हो। हाँ मीरा के बाद कुछ स्त्री कवयित्रियों के नाम अवश्य मिलते हैं।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. गुजरात के भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
2. गुजरात में मीरा के प्रवास के कारणों का विश्लेषण कीजिए।
3. गुजरात के भक्त कवियों के साथ मीरा के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 परिवार में मीरा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मेड़ता में मीरा का बचपन

4.3 मीरा, महाराणा मेवाड़ और पारिवारिक परम्पराएँ

4.4 महाराणा मेवाड़ परिवार में मीरा की हैसियत

4.5 मीरा और कुंवर भोज के आपसी संबंध

4.6 मेड़तिया-हाड़ा प्रतिस्पर्द्धा और मीरा की भूमिका

4.7 मीरा की लोकप्रियता में वृद्धि तथा महाराणा परिवार का अलोकप्रिय होना

4.8 पारिवारिक शक्ति का मीरा के आस-पास ध्रुवीकरण

4.9 महाराणा परिवार से मीरा का निष्कासन

4.10 सारांश

4.11 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मध्यकालीन राजपूताने में प्रचलित सतीप्रथा जैसी अनेक बुराइयों के बारे में जान सकेंगे जिनके विरुद्ध मीरा ने आवाज उठाई थी;
- महाराणा परिवार में मीरा की हैसियत का अनुमान लगा सकेंगे एवं यह जान सकेंगे कि आखिर वह कौन सी शक्ति थी जिसके आधार पर मीरा ने प्रतिरोध का साहस दिखाया;
- मीरा एवं उसके पति कुंवर भोज के आपसी संबंधों की प्रकृति को जान सकेंगे तथा यह समझ सकेंगे कि कृष्ण भक्ति, मीरा व उसके पति के मध्य मधुर संबंधों का प्रमाण थी;
- महाराणा सांगा की मृत्यु से उत्पन्न शक्ति शून्यता एवं मेवाड़ में मेड़तियों व हाड़ाओं के मध्य संघर्ष व उसमें मीरा की भूमिका के बारे में जान सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि कृष्ण भक्ति ने मीरा को किस प्रकार लोकप्रिय बनाया तथा वे क्या कारण थे जिनकी वजह से महाराणा विक्रमादित्य अलोकप्रिय हो रहे थे;
- यह जान पाएँगे कि महाराणा परिवार की शक्ति किस प्रकार मीरा के आस-पास ध्रुवीकृत हो रही थी; और
- उन कारणों को पहचान सकेंगे जिनकी वजह से अंततः मीरा को चित्तौड़ दुर्ग छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

4.1 प्रस्तावना

मीरा का व्यक्तित्व क्रांतिकारी था। मीरा की मृत्यु हुए लगभग 500 वर्ष हो चुके हैं। इस लम्बे समय अंतराल ने न केवल मीरा के वास्तविक चरित्र को ढक लिया है वरन् उसके चरित्र का एक भिन्न ही रूप निर्मित कर दिया गया है। एक रूढ़िवादी जाति में जन्म लेकर भी मीरा में प्रतिरोध का अपार साहस था। उसने न केवल तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों एवं प्रथाओं के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बुलंद किया वरन् मेवाड़ की प्रजा की भलाई के लिए सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया में यथासंभव भूमिका अदा करने का प्रयत्न भी किया। मीरा की यही नई भूमिका मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा विक्रमादित्य एवं राजमाता करमेती को पसंद न थी। परिणामस्वरूप मेवाड़ का राजपरिवार मीरा एवं महाराणा के मध्य विवाद एवं संघर्ष का अखाड़ा बन गया। चित्तौड़ दुर्ग में मीरा की उपस्थिति महाराणा के लिए परेशानी का सबब थी। अतः महाराणा मीरा को रास्ते से हटाने के लिए उसे मार डालना चाहता था या फिर चित्तौड़ दुर्ग से निष्कासित कर देना चाहता था ताकि वह निरंकुश होकर शासन कर सके। मेवाड़ का सामंती ढाँचा कुछ इस प्रकार का था कि स्थानीय सामंतों की सहायता के बिना शासन का संचालन महाराणा के लिए संभव नहीं था। मीरा का संबंध मेवाड़ के महत्वपूर्ण सामंत परिवारों से था। झाला सामंत मीरा के ननिहाल पक्ष से संबंधित थे तो मीरा स्वयं मेड़तिया राठौड़ों की बेटी थी। महाराणा परिवार की बड़ी बहू होने के नाते चित्तौड़ दुर्ग एवं उसके बाहर मीरा का अपना व्यक्तिगत प्रभाव भी था। इसके साथ ही कृष्ण भक्त के रूप में मीरा की लोकप्रियता मेवाड़ की सीमाओं का अतिक्रमण कर चुकी थी। अतः महाराणा विक्रमादित्य एवं राजमाता करमेती के लिए मीरा को प्रतिबंधित करना आसान न था इसी कारण मीरा व महाराणा में आपसी संघर्ष जारी रहा। इस प्रकार मीरा ने जब तक अंतिम रूप से चित्तौड़ दुर्ग छोड़ नहीं दिया तब तक महाराणा मेवाड़ का परिवार संघर्ष का अखाड़ा बना रहा।

4.2 मेड़ता में मीरा का बचपन

मीरा नाम की व्युत्पत्ति, मीरा का जन्म स्थान एवं जन्म तिथि के समान मीरा के बचपन के संबंध में जानने के लिए हमारे पास जो स्रोत सामग्री उपलब्ध है वह कल्पना एवं अनुमानों पर आधारित है। मीरा का जन्म चाहे कहीं पर भी हुआ हो परंतु इतना निश्चित है कि मीरा का लालन-पालन मीरा के दादा राव दूदा के संरक्षण में हुआ। किवदंतियों का आधार ग्रहण करने पर मीरा को बचपन से ही कृष्ण भक्त स्वीकार करना पड़ता है परंतु ऐतिहासिक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि मीरा की कृष्ण भक्ति उसके बचपन का प्रेम न होकर मीरा की परवर्ती आवश्यकता थी।

नागरीदास कृत सिंगार-सागर के अन्तर्गत पद-प्रसंगमाला में मीरा को सती किए जाने के प्रयासों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। मीरा ने अपने पति भोजराज के निधन को यों माना-

ऐसे बार को क्या बरूं जो जनमै और मर जाए।
बर बरिए एक सांवरौ जासों चुडलो अमर हो जाए।।

मीरा की कृष्ण भक्ति परवर्ती आवश्यकता थी न कि बचपन का संस्कार। मध्यकालीन राजपूताने में विधवा होने पर प्रायः स्त्री को पति की चिता के साथ जलाकर सती किया जाता था। मीरा ने कृष्ण को अपना पति घोषित किया। अतः वह विधवा न रही। मीरा सती न हुई क्योंकि उसका पति तो अजर-अमर था।

सुखसारण ने मीरा की कृष्ण भक्ति को पूर्व जन्म का संस्कार माना। मीरा बाई की परची में एक दोहा इस प्रकार है :

वरसांणा की ब्रांमणी, तज्यो प्रीत सुं प्रान।
सो मीरा भई दूसरी, अग्या किसन की मान।।

ब्रजमंडल में किंवदंती प्रचलित है कि मीरा पूर्व जन्म में गोप बालिका थी। इसी किंवदंती का आधार सुखसारण ने अपनी रचना में ग्रहण किया है। मारवाड़ अंचल में एक प्रचलित किंवदंती के अनुसार बचपन में मीरा ने नगर सेठ की बेटी की बारात को देखा। घोड़ी पर बैठे दूल्हे को देखकर मीरा ने अपनी माँ से प्रश्न किया कि मेरा दूल्हा कहाँ है? माँ ने टालने के इरादे से कहा कि तेरा दूल्हा कृष्ण है। तभी से मीरा कृष्ण की अनन्य भक्त हो गई।

मीरा का पितृकुल विष्णु के एक लोकरूप चारभुजानाथ का परम भक्त था। इसी प्रकार मीरा का पतिकुल शिव के एक लोकरूप एकलिंगनाथ का भक्त था। ऐसे में मीरा का चारभुजानाथ अथवा एकलिंगनाथ में से किसी एक की भक्त न बनकर कृष्णभक्त बनना आश्चर्यजनक लगता है। पुरातात्विक सर्वेक्षण से भी अनुमान होता है कि मीरा के समय तक मेवाड़ एवं मारवाड़ में कृष्ण भक्ति विशेष लोकप्रिय नहीं थी। मीरा ने स्वयं को एकलिंगनाथ अथवा चारभुजानाथ की पत्नी घोषित न करके स्वयं को कृष्ण की पत्नी घोषित किया तो यह उद्देश्यपूर्ण था। चारभुजानाथ अथवा एकलिंगनाथ की पत्नी बनकर वह स्वयं की सती होने से रक्षा न कर पाती अतः कृष्ण की कलयुग की गोपी बनकर मीरा सधवा स्त्री हो सकती थी।

राजपूताने में मीरा की लोकप्रियता स्त्रियों एवं दलितों के मध्य तेजी से बढ़ रही थी। मीरा की यह लोकप्रियता सामंतवर्ग एवं ब्राह्मणवर्ग के लिए अप्रत्याशित थी। इस वर्ग के लिए यह स्वीकार करना संभव न था कि मीरा ने सतीप्रथा के विरुद्ध आवाज बुलंद करने के लिए कृष्ण भक्ति का आश्रय ग्रहण किया। यही वजह थी कि ब्राह्मणों द्वारा रचित ग्रंथों एवं उनके द्वारा प्रचारित किवदंतियों में मीरा के कृष्ण प्रेम को बचपन अथवा पूर्व जन्म का संस्कार बताया गया है। वास्तविकता यही है कि मीरा का बचपन अन्य राजपूत बालिकाओं से किसी भी तरह भिन्न नहीं था। मीरा पर अन्य स्त्रियों के समान ही समस्त सामंती बंधन लागू थे। मीरा में कृष्णभक्ति का बीजांकुरण बचपन से ही मान लेना उचित नहीं जान पड़ता। मीरा के लिए कृष्ण भक्ति साधन थी न कि साध्य। कृष्ण भक्ति मीरा की परवर्ती जरूरत थी। मीरा के बचपन को हमें इसी रूप में लेना चाहिए।

4.3 मीरा, महाराणा मेवाड़ और पारिवारिक परम्पराएँ

मीरा के संघर्ष को समझने के लिए महाराणा मेवाड़ के परिवार तथा राजमहल के वातावरण एवं परम्पराओं पर दृष्टिपात करना होगा। यह कम आश्चर्य नहीं था कि एक रूढ़िवादी जाति में जन्म लेकर तथा सामंती वातावरण में पलकर भी मीरा नवचेतना से युक्त थी। मीरा में प्रतिरोध की अपार क्षमता तथा विपरीत परिस्थितियों में परिपक्व निर्णय लेने की योग्यता थी। यही वजह है कि मीरा के पति कुंवर भोज की मृत्यु के पश्चात् मीरा को जब सती करने का प्रयास किया गया तो मीरा ने कहा कि-

मीरा रंग लाग्यो हो नांम हरी, और रंग अटकि परि। (टेक)
गिरधर गास्या सती न होस्याँ, मन मोह्यो घण नामी।
जेठ बहू को नहीं राणाजी, थे सेवक म्हे स्वामी।।

मीरा ने सती होने से इनकार कर दिया तथा तर्क दिया कि वह कुंवर भोज को नहीं, वरन् भगवान कृष्ण को अपना पति मानती है। चूँकि कृष्ण अमर है इसलिए उसकी मृत्यु नहीं

हो सकती तथा जिसके पति की कभी मृत्यु न हो उसे सती होने की आवश्यकता ही नहीं है। उल्लेखनीय है कि राजपूत स्त्रियाँ प्रायः स्वर्ग प्राप्ति की झूठी मान्यता, वैधव्य के कारण मिलने वाले शारीरिक कष्ट तथा मानसिक प्रताड़ना से बचने के लिए सती होने का निर्णय ले लिया करती थीं परंतु मीरा में अपार जीजीविषा तथा संघर्ष की क्षमता थी, अतः उसने सती होने से इनकार कर दिया एवं संघर्षमय जीवन का रास्ता चुना। अन्य स्तर पर कुछ राजनीतिक कारणों की वजह से भी मीरा को सती करना महाराणा मेवाड़ के हित में नहीं था। यदि मीरा को सती कर दिया जाता तो उसके मरने के साथ ही मेवाड़ का मेड़तियों से वैवाहिक-रणनीतिक संबंध भी समाप्त हो जाता। अतः यही संभव लगता है कि स्वयं महाराणा सांगा मीरा को सती कर देने के पक्ष में नहीं रहे होंगे। चित्तौड़ राजमहल का सामंती वातावरण कुछ इस प्रकार का था कि स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। तत्कालीन समाज में राजपरिवार की स्त्रियों को अक्षर तथा शास्त्र ज्ञान तो कराया जाता था परंतु उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती थी कि वे राजकार्य अथवा शासन के किसी अन्य क्षेत्र में किसी भी प्रकार की कोई सहायता प्रदान करें। इन तमाम प्रतिबंधों के बावजूद राजनीतिक गतिविधियों के निकट सम्पर्क में रहकर राजपरिवार की स्त्रियाँ राजनीति में दक्ष हो जाती थीं तथा प्रशासनिक कार्यों की पर्याप्त समझ उनमें विकसित हो चुकी होती थी। मीरा भी इसका अपवाद नहीं थी। उसे अक्षर ज्ञान के साथ-साथ राजनीति का भी पर्याप्त ज्ञान था। ध्यान रहे कि स्त्रियों की सार्वजनिक गतिविधियों पर अंकुश थे परंतु मंदिर जैसे सार्वजनिक स्थलों पर उनके विचरण पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं था। यही वजह है कि आगे चलकर मीरा ने कृष्ण मंदिर को अपनी सार्वजनिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया।

मेवाड़ के सामंती वातावरण में स्त्रियों की सार्वजनिक गतिविधियों पर अनेक प्रतिबंधों के बावजूद उनके सम्पत्ति संबंधी अधिकार विस्तृत थे। राजमहल की परिसम्पत्तियों पर सामूहिक अधिकार के अतिरिक्त राजपरिवार की स्त्रियों की निजी सम्पत्ति भी हुआ करती थी। यह निजी सम्पत्ति वस्तुतः विभिन्न अवसरों पर मिली हुई भेंट होती थी। इस सम्पत्ति का उपयोग राजकुल की स्त्रियाँ प्रायः निर्माण कार्यों में किया करती थी। स्वयं मीरा ने भी अपने निजी प्रयासों द्वारा चित्तौड़ दुर्ग में कृष्ण मंदिर का निर्माण करवाया। मीरा से पूर्व कुछ रानियों द्वारा भी ऐसे निर्माण कार्य करवाए गए हैं। इस प्रकार राजपरिवार की स्त्रियों के सार्वजनिक जीवन पर जहाँ एक तरफ अनेक प्रतिबंध थे वहीं दूसरी तरफ उनकी निजी सम्पत्ति उन्हें अनेक अवसरों पर मजबूती व सम्बल प्रदान करती थी। मीरा की अपनी निजी सम्पत्ति के कारण ही मीरा अनेक जगहों की यात्राएँ कर सकी तथा वित्तीय रूप से उसे परिवार के मुखिया अर्थात् महाराणा मेवाड़ पर आश्रित नहीं होना पड़ा। फलतः मीरा महाराणा विक्रमादित्य तथा अमानुषिक परम्पराओं के विरुद्ध प्रतिरोध का साहस जुटा सकी जो स्त्री के अधिकारों को सीमित करते थे।

प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि कबीर व अन्य भक्त कवियों की तुलना में मीरा का विभिन्न कुरीतियों तथा अमानवीय परम्पराओं के प्रति प्रतिरोधी रुख व्यक्तिगत हित संवर्द्धन की भावना से प्रेरित था। चित्तौड़ दुर्ग के वातावरण व महाराणा परिवार की परम्पराओं को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मीरा का यह व्यक्तिगत प्रतिरोध भी कम महत्वपूर्ण नहीं था जिसने परवर्ती पीढ़ी को अमानवीय कुरीतियों के विरुद्ध लड़ने का एक वैकल्पिक मार्ग प्रदान किया। यह केवल संयोग नहीं है कि मीरा के पश्चात् स्त्रियों को सती किए जाने तथा सामूहिक सती प्रथा (ज़ौहर) जैसी घटनाओं में उल्लेखनीय कमी आ गई थी।

4.4 महाराणा मेवाड़ परिवार में मीरा की हैसियत

मीरा का पति कुंवर भोज यदि जिंदा रहता तो महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् वो ही मेवाड़ का भावी महाराणा होता तथा मेड़तियों से वैवाहिक संबंधों के कारण एक सफल शासक भी। कुंवर भोज की पत्नी होने के नाते मीरा मेवाड़ की भावी पटरानी होती तथा महत्वपूर्ण राजीनीतिक निर्णयों में उसका अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप रहता। दुर्भाग्यवश कुंवर भोज की मृत्यु महाराणा सांगा के जीवनकाल में ही हो चुकी थी। अतः मीरा कभी भी मेवाड़ राज्य की पटरानी नहीं बन सकी तथापि मेवाड़ कुंवर की विधवा होने के नाते मीरा महाराणा परिवार की स्त्रियों में सर्वप्रमुख थी। इसी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण मीरा को चित्तौड़ दुर्ग में स्थित महलों में से एक प्रमुख महल जिसे कुंवरपदा का महल कहा जाता था, मीरा को निवास स्थल के रूप में मिला हुआ था। प्रसंगवश यह उल्लेख करना रुचिकर होगा कि कुंवरपदा का महल मीरा के समय सूरजगोखड़ा के महल, जहाँ महाराणा मेवाड़ अपनी पत्नियों के साथ रहता था, के पश्चात् चित्तौड़ दुर्ग का सबसे महत्वपूर्ण महल था। यह महल महाराणा मेवाड़ के महल के ठीक बगल में स्थित था। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि महाराणा के परिवार में मीरा की क्या हैसियत रही होगी।

मेवाड़ का महाराणा मुगल बादशाह की तरह सर्वशक्तिमान शासक नहीं था। महाराणा को मेवाड़ राज्य के प्रथम श्रेणी के सामंतों की सलाह से काम करना पड़ता था तथा इन सामंतों को पर्याप्त सम्मान भी देना पड़ता था। यदि महाराणा उम्र में छोटा है तो उसे परिवार के वरिष्ठ सदस्यों का सम्मान करना पड़ता था। मीरा परिवार के ऐसे ही वरिष्ठ सदस्यों में से एक थी। व्यवहार में महाराणा को सामंतों तथा परिवार के वरिष्ठ सदस्यों के अंकुश में रहना पड़ता था तथापि सिद्धांत रूप में शासन व राज्य का सर्वोच्च व्यक्ति वही होता था तथा उसका निर्णय ही अंतिम समझा जाता था। विशेष परिस्थितियों में परिवार के सभी व्यक्तियों तथा प्रथम श्रेणी के सामंतों को भी महाराणा का निर्णय स्वीकार करना पड़ता था।

मीरा महाराणा परिवार की न केवल एक वरिष्ठ सदस्य थी वरन् मेड़तिया राठौड़ों की बेटी होने के नाते उसका संबंध एक शक्तिशाली राजपूत राजवंश से था। दूसरे शब्दों में मीरा के विरुद्ध किया जाने वाला कोई भी अत्याचार मेड़तियों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही के समान था। इन सब कारणों की वजह से महाराणा मेवाड़ मीरा के विरुद्ध किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष कार्यवाही करने में अक्षम थे। मीरा की व्यक्तिगत हैसियत तथा अनेक राजनीतिक समीकरणों एवं अंकुशों की वजह से महाराणा मीरा की हत्या करने में अक्षम थे। मेवाड़ राजकुल की परम्परा के अनुसार स्त्रियों पर हाथ उठाया जाना भी कायरता समझा जाता था। बावजूद इसके महाराणा विक्रमादित्य मीरा की मौत चाहते थे ताकि मेड़तियों को जोड़ने वाली मीरा रूपी कड़ी टूट जाए एवं महाराणा अंकुशहीन मेवाड़ राज्य का संचालन कर सके। शासक द्वारा कराए जाने वाले निर्माण कार्य शासक की शक्ति के द्योतक होते हैं। महाराणा कुंभा के समय मेवाड़ राज्य की शक्ति में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी थी। चित्तौड़ दुर्ग स्थित महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित कीर्ति स्तंभ इसी शक्ति वृद्धि का द्योतक है। महाराणा सांगा के समय मेवाड़ की शक्ति चर्मोत्कर्ष पर थी। इस समय चित्तौड़ दुर्ग के भीतर तथा बाहर अनेक निर्माण कार्य हुए। दुर्ग के भीतर मीरा ने भी मुरलीधर कृष्ण के मंदिर का निर्माण करवाया था। इससे मीरा की राजनीतिक शक्ति एवं सामर्थ्य का अनुमान होता है। निःसंदेह मीरा महाराणा परिवार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। फलतः कुछ गाँवों का राजस्व महाराणा के हस्तक्षेप के बिना सीधे मीरा को प्राप्त होता था। वैधव्य की प्राप्ति एवं संरक्षक के रूप में ससुर महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मीरा का अधिकांश समय कृष्ण मंदिर में व्यतीत होता था। मीरा ने अपनी गतिविधियों का केन्द्र इसी कृष्ण मंदिर को

बना दिया था। मंदिर में मीरा कृष्ण की पूजा-अर्चना के अलावा भजन भी गाती थी तथा अति उत्साह में कभी-कभी नृत्य भी करती थी।

मीरा से पूर्व महाराणा परिवार की कुछ स्त्रियाँ भक्त के रूप में प्रसिद्ध थीं। कइयों ने चित्तौड़ दुर्ग एवं अन्यत्र मंदिरों का निर्माण भी करवाया परंतु कृष्ण में मग्न होकर नृत्य करना परम्परा से हटकर था। मीरा के इस परम्परा विरुद्ध कार्य ने मेवाड़ की जनता के मध्य इसे चर्चा का विषय बना दिया। परिणाम स्वरूप लोक में मीरा तेजी से प्रसिद्ध होने लगी एवं मीरा के संबंध में अनेक प्रकार की किंवदंतियों एवं कथाओं का प्रसार होने लगा। कोई उसे कृष्ण की गोपी का अवतार मानता तो कोई साक्षात शक्ति का दूसरा रूप। मीरा की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता महाराणा विक्रमादित्य के लिए चिंता का विषय थी क्योंकि इस लोकप्रियता व प्रसिद्धि का उपयोग स्वयं महाराणा के विरुद्ध भी हो सकता था। फलतः मीरा व महाराणा विक्रमादित्य के मध्य विवाद और अधिक गहराने लगे।

4.5 मीरा और कुंवर भोज के आपसी संबंध

प्रचलित किवदंतियों से पता चलता है कि कुंवर भोज जब मेड़ता प्रवास पर थे तब मीरा के मधुर संगीत से प्रभावित होकर उनके मन में मीरा से विवाह की इच्छा जागृत हुई। मीरा अपनी विद्वत्ता के कारण अपने दादा राव दूदा की प्रिय थी। मीरा की प्रतिभा से प्रभावित होकर ही महाराणा सांगा ने मीरा को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया था। इन कथाओं से निष्कर्ष यही निकलता है कि मीरा के अपने पति कुंवर भोज से मधुर संबंध थे। महाराणा परिवार में मीरा का महत्व कुंवर भोज की विशिष्ट हैसियत का ही परिणाम था। मीरा के संबंध कुंवर भोज से अच्छे नहीं होते तो संभावना यही थी कि मीरा को चित्तौड़ दुर्ग से हटाकर किसी अन्य दुर्ग में भेज दिया जाता जैसा कि महाराणा प्रताप की माता के साथ उनके पिता उदयसिंह ने किया था। सत्य यही है कि मीरा ने जब तक अंतिम रूप से मेवाड़ का त्याग नहीं कर दिया वह चित्तौड़ दुर्ग में ही बनी रही। इससे अनुमान लगता है कि मीरा व उसके पति कुंवर भोज के मध्य मधुर संबंध थे। वैसे भी मीरा के पति भोज की मृत्यु विवाह के थोड़े दिनों पश्चात् ही हो गई थी एवं इतने अल्प समय में दोनों के मध्य कटुता की संभावना कम ही प्रतीत होती है। मीरा ने अपने पदों में जिस महाराणा की आलोचना की है वह उनका पति कुंवर भोज नहीं वरन उसका देवर महाराणा विक्रमादित्य है।

मीरा ने सती होने से इनकार कर दिया था एवं यह घोषणा की थी कि उसका पति कुंवर भोज नहीं वरन् कृष्ण है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि मीरा अपने पति से प्रेम नहीं करती थी एवं मीरा व कुंवर भोज के संबंधों में कटुता थी। मीरा के नाम पर प्रचलित पदों में जिस महाराणा के प्रति घृणा प्रदर्शित हुई है वह मीरा का देवर महाराणा विक्रमादित्य था न कि मीरा का पति कुंवर भोज। मीरा का पति भोज कुंवर तो था परंतु व कभी भी मेवाड़ का महाराणा नहीं बना। क्योंकि उसकी मृत्यु अपने पिता के जीवनकाल में ही हो गई थी। वैसे भी मीरा की महानता इस बात में नहीं है कि उसके संबंध अपने पति से अच्छे थे या नहीं, वरन् मीरा की महानता इस बात में है कि उसने सती प्रथा जैसी अमानवीय परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठाई एवं आम जनता के दुःख को अपना दुःख माना। मीरा के पश्चात् मेवाड़ क्षेत्र में सतीप्रथा जैसी घटनाएँ भले ही पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई हों परंतु बहुत कम हो गई थीं तथा सामूहिक सतीप्रथा जैसे उदाहरण धीरे-धीरे लुप्त होने लगे जो मीरा के समय तक अपने चरम पर थे। मीरा के कृष्ण प्रेम का अर्थ पति भोज का विरोध नहीं माना जाना चाहिए। सच बात तो यह है कि मीरा ने सती होने से इसलिए इनकार कर दिया था कि वह अपने पति से बेहद प्रेम करती थी तथा अपने पति के प्रदेश मेवाड़ के स्त्री-पुरुषों के लिए कुछ कर सके इसलिए अपना अमूल्यजीवन सुरक्षित

रखना चाहती थी। राख का ढेर मेवाड़ के लिए कुछ नहीं कर पाता, अतः मीरा ने राख का ढेर बनने से इनकार कर दिया। मीरा पति को मित्र मानती थी स्वामी नहीं। पति को स्वामी स्वीकार करने पर स्त्री उसकी सम्पत्ति हो जाती है परंतु मीरा ने अपने पति को मित्र स्वीकार किया था। अपने पति की मृत्यु के बाद मीरा ने कृष्ण में पति रूप को पाया यही मीरा की महानता है जो हमेशा वंदनीय रहेगी। इस प्रकार मीरा व कुंवर भोज के संबंध मधुर थे, कटुतापूर्ण नहीं।

4.6 मेड़तिया-हाड़ा प्रतिस्पर्द्धा और मीरा की भूमिका

मेवाड़ के महाराणा सांगा द्वारा मीरा को मेवाड़ की कुलवधू चुनना एक राजनीतिक ज़रूरत थी। महाराणा कुंभा के समय मारवाड़ के राठौड़ मेवाड़ के सामंत हुआ करते थे। राव रणमल इन राठौड़ सरदारों का नेता था। मेवाड़ के सामंतों ने मिलकर राव रणमल की हत्या कर दी एवं उसके पुत्र जोधा ने वहाँ से भागकर अपनी जान बचाई। इस संदर्भ में एक दोहा प्रसिद्ध है।

चूंडा अजमल आबिया, मांडू हूँ धक आग।
जोधा रणमल मारिया, भाग सके तो भाग।।

इस घटना ने मेवाड़ व राठौड़ों के मध्य शत्रुता के बीज बो दिए। आगे चलकर जोधा ने मारवाड़ राज्य की स्थापना की तथा जोधपुर को राजधानी बनाया किंतु इस घटना ने राजपूतों की शक्ति को विभाजित कर दिया।

मीरा के ससुर महाराणा सांगा के समय मेवाड़ राज्य की शक्ति चरम पर थी। महाराणा सांगा अपने पड़ोसी राज्यों गुजरात व मालवा को मात दे चुके थे तथा दिल्लीपति इब्राहिम लोदी को भी सांगा के साथ युद्ध में पराजय का मुँह देखना पड़ा था। अब महाराणा सांगा की महत्वाकांक्षा दिल्ली पर अधिकार करने की थी। सांगा यह अच्छी तरह समझता था कि राठौड़ों को साथ लिए बिना दिल्ली के तख्त पर कब्जा करने का स्वप्न पूरा करना दुष्कर होगा। अतः सांगा ने मीरा को अपनी बहू बनाया ताकि वह राठौड़ों की एक महत्वपूर्ण शाखा मेड़तिया राठौड़ों को अपने पक्ष में कर सके। मीरा मेड़ता के शासक राव दूदा की पौत्री थी। इस प्रकार मीरा व मेवाड़ के कुंवर भोज के विवाह संबंध ने मेड़तिया राठौड़ों को मेवाड़ के पक्ष में कर दिया। मीरा व कुंवर भोज के विवाह के परिणाम स्वरूप मेड़तिया राठौड़ मेवाड़ कुंवर के रिश्तेदार बन चुके थे। अतः उन्हें मेवाड़ राज्य में ऊँचे पदों पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार एक बार पुनः राठौड़ मेवाड़ की राजनीति में एक शक्ति केन्द्र बनकर उभरे।

मेवाड़ के मध्यकालीन इतिहास के संदर्भ में सर्वाधिक विश्वसनीय जानकारी हमें कविराजा श्यामलदास द्वारा लिखित ग्रंथ "वीर विनोद" से मिलती है। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि महाराणा सांगा का विवाह हाड़ा शासक राव भांडा की पौत्री करमेती (कर्मवती) से हुआ था। चित्तौड़ दुर्ग में करमेती, हाड़ी रानी के नाम से जानी जाती थी। इस विवाह संबंध ने हाड़ाओं को मेवाड़ के महाराणा का रिश्तेदार बना दिया था, परिणामस्वरूप हाड़ाओं को रणथंभौर जैसी महत्वपूर्ण ज़ागीर एवं मेवाड़ राज्य में महत्वपूर्ण पदों की प्राप्ति हुई एवं मेवाड़ की राजनीति में वे एक शक्ति केन्द्र बनकर उभरे।

मेवाड़ जब उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बनकर उभर रहा था तभी महान मुगल बाबर हिन्दुस्तान में प्रवेश करता है एवं दिल्लीपति इब्राहिम लोदी को दिल्ली के समीप पानीपत नामक स्थान पर लड़े गए युद्ध में पराजित कर एवं उसे युद्ध स्थल में ही मौत के घाट उतार कर स्वयं दिल्लीपति बन बैठता है। आगे खानवा के युद्ध में वह सांगा को भी पराजित करता है। युद्ध स्थल से लौटने के पश्चात् महाराणा को अपने ही सामंतों द्वारा

उसे ज़हर खिला दिया जाता है एवं मेबाड़ के सबसे शक्तिशाली महाराणा की मौत हो जाती है।

महाराणा सांगा के पश्चात् उसका पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर बैठता है किंतु वह अपने ही सामंत रणथंभौर के जागीरदार सूर्यमल्ल के हाथों मारा जाता है। रत्नसिंह की मृत्यु के साथ ही मेवाड़ में शक्ति शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आगे मेवाड़ की गद्दी पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए हाड़ाओं और मेड़तियों में संघर्ष आरंभ होता है।

अंततः महाराणा सांगा के अल्पवयस्क पुत्र कुंवर विक्रमादित्य को रणथंभौर के दुर्ग से बुलाकर मेवाड़ का महाराणा बनाया जाता है किंतु नए महाराणा की अल्पवयस्कता मेवाड़ के सामंतों को उद्दण्ड एवं अवज्ञाकारी बना देती है।

नया महाराणा हाड़ाओं का भांजा था अतः स्वाभाविक रूप से मेवाड़ की राजनीति में हाड़ाओं का वर्चस्व बढ़ने लगा। मेड़तियों को यह बात स्वीकार्य न थी परिणामस्वरूप चित्तौड़ दुर्ग मेड़तिया -हाड़ा प्रतिद्वन्द्विता का अखाड़ा बन गया। मेवाड़ कुंवर की विधवा तथा मेवाड़ की युवरानी होने के नाते मीरा ही वह मंच थी जो मेड़तियों को मेवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप का मौका देती थी। अतः महाराणा परिवार में मीरा व सिसोदिया राणा के संघर्ष को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। मीरा का महाराणा के प्रति आक्रोश मात्र व्यक्तिगत न होकर पारिवारिक प्रतिद्वन्द्विता एवं मेड़तिया-हाड़ा प्रतिस्पर्द्धा का भी परिणाम था। चूँकि मीरा एक स्त्री थी, अतः महाराणा विक्रमादित्य ने मर्यादा, लोकलाज इत्यादि अनेक बहानों द्वारा मीरा को प्रतिबंधित करना चाहा। मीरा को यह मंजूर न था कि उसे स्त्री होने के कारण लोकलाज व मर्यादा के नाम पर प्रतिबंधित किया जाए, अतः उसने प्रतिरोध का साहस दिखाया एवं स्त्रियों के लिए तय प्रतिमानों को मानने से इनकार कर दिया। यहीं नहीं उसने महाराणा विक्रमादित्य को खुली चुनौती देते हुए कहा कि-

राणाजी! थे क्यांनै राखो म्हांसूं वैर
थे तो राणाजी म्हांनै इसड़ा लागो, ज्यों वृच्छन में कैर
महल-अटारी हम सब ताग्या, ताग्यो थांरो सहर
काजळ-टीकी हम सब ताग्या, भगवीं चादर पहर
थारै रूस्यां राणा! कुछ नहि बिगड़ै, अब हरि कीन्ही महर
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इमरत कर दियो जहर।

4.7 मीरा की लोकप्रियता में वृद्धि एवं महाराणा परिवार का अलोकप्रिय होना

मेवाड़ का राजपरिवार शिव के एक लोकरूप एकलिंग को अपना कुल देवता मानता था। महाराणा मेवाड़ स्वयं को एकलिंग के दीवान के रूप में प्रस्तुत करता था। यहाँ तक कि शासन के समस्त आदेश एकलिंग एवं उसके दीवान (महाराणा) के नाम से जारी होते थे, न कि महाराणा मेवाड़ के नाम से। ऐसा करने के पीछे मेवाड़ के महाराणाओं का उद्देश्य था स्वयं को मेवाड़ की जनता के सामने एक भक्त के रूप में प्रस्तुत करना। जब कोई महाराणा स्वयं को भक्त के रूप में प्रस्तुत करता था तो आम जनता का समर्थन एवं सहानुभूति उसे सहज ही प्राप्त हो जाती थी। मीरा के दादा राव दूदा तथा उसके परदादिया ससुर महाराणा कुंभा शासक होने के साथ-साथ भक्त के रूप में भी प्रसिद्ध थे। आमजन में भक्त के रूप में उनके चमत्कार की कहानियाँ प्रचलित थीं। इसी परम्परा का पालन करते हुए मीरा ने स्वयं को भक्त के रूप में प्रस्तुत किया। अतः युवरानी मीरा की लोकप्रियता का एक कारण उसका युवरानी होने के साथ-साथ स्वयं को भक्त के रूप में

प्रस्तुत करना भी था। धीरे-धीरे मीरा के साथ अनेक चमत्कारिक घटनाएँ जुड़ती गईं एवं उसकी लोकप्रियता में तेजी से वृद्धि होने लगी।

मीरा एक कुशाग्र बुद्धि वाली महिला थीं। उसकी कुशाग्रता से प्रभावित होकर ही सांगा ने उसे मेवाड़ की कुलवधू के उपयुक्त माना था। मीरा, राव दूदा एवं महाराणा सांगा तीनों ने आम जनता के सामने स्वयं को एक भक्त के रूप में प्रस्तुत किया एवं व्यापक प्रसिद्धि पाई। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि मीरा के समय मेवाड़ में जैन धर्म का व्यापक प्रभाव था। इसी प्रकार मेवाड़ के विस्तृत प्रदेश में फैली हुई जनजातियों के अपने अलग देवता थे। लोक में अनेक देवताओं की पूजा प्रचलित थी। कृष्ण का चरित्र लोक से इतने गहरे रूप में संबद्ध था कि समाज के हर वर्ग में उसे मान्यता प्राप्त थी। मीरा ने स्वयं को कृष्ण भक्त के रूप में प्रस्तुत किया एवं चित्तौड़ दुर्ग में मुरलीधर कृष्ण के मंदिर का निर्माण करवाया। मीरा का जन्म वैष्णव परिवार में हुआ था। मेड़तिया वैष्णव थे एवं वे विष्णु के लोकरूप चारभुजानाथ को अपना आराध्य मानते थे। मेवाड़ का राजपरिवार शैव था एवं एकलिंगनाथ को अपना कुलदेवता मानता था। इस दृष्टि से मीरा का कृष्ण भक्त होना एक नई बात थी परंतु कृष्ण भक्ति ने मीरा को लोक में व्यापक स्वीकृति एवं प्रसिद्धि दिलाई।

खानवा के युद्ध की पराजय एवं महाराणा सांगा की मृत्यु ने मेवाड़ के लिए संकट उपस्थित कर दिया था। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा किंतु शीघ्र ही रत्नसिंह की मृत्यु के कारण संकट और अधिक गहरा गया। मेवाड़ का नया महाराणा अल्पवयस्क एवं दरबारी तहजीब से अनभिज्ञ था। परिणाम स्वरूप मेवाड़ के सामंतों के मध्य वह तेजी से अलोकप्रिय हो रहा था। चित्तौड़ के निकट उत्तर में स्थित झाड़ोल की जागीर प्रथम श्रेणी की जागीर थी। वहाँ का सामंत मीरा के ननिहाल पक्ष से संबंधित था। अतः महाराणा विक्रमादित्य एवं झाड़ोल के सामंत के मध्य असहजता स्वाभाविक थी। इसी प्रकार न केवल आम जनता वरन् मेवाड़ के कई सामंतों के मध्य मीरा का अपना व्यक्तिगत प्रभाव एवं लोकप्रियता थी। मेवाड़ की राजनीति में महाराण सांगा के समय से ही मेड़तियों का विशेष प्रभाव रहा था। अतः मेवाड़ की राजनीति में मेड़तियों की प्रभावी भूमिका अप्रत्यक्ष रूप में मीरा के प्रभाव में वृद्धि कर रही थी। खानवा के युद्ध एवं मुगलों के साथ संघर्ष ने मेवाड़ की शक्ति एवं आर्थिक स्थिति को वैसे ही कमजोर कर दिया था। उस पर अब मेवाड़ की बागडोर एक ऐसे अल्पवयस्क महाराणा के हाथों में थी जिसे राजकाज एवं राजनीति तो दूर की बात प्राथमिक रूप मे दरबारी तहजीब का भी ठीक से ज्ञान नहीं था। ऐसी स्थिति में सामंतों पर महाराणा का प्रभाव एवं पकड़ लगातार कमजोर होती जा रही थी एवं सामंत उद्दण्ड एवं अवज्ञाकारी हो रहे थे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ के राजस्व-स्रोत सूखने लगे एवं राजपरिवार की वित्तीय स्थिति कमजोर होने लगी।

कमजोर वित्तीय स्थिति की क्षतिपूर्ति महाराणा ने अपनी प्रजा पर अतिरिक्त कर लगाकर करनी चाही परंतु महाराणा के इस प्रयास ने मेवाड़ की जनता के मध्य महाराणा परिवार को अत्यधिक अलोकप्रिय बना दिया। वहीं दूसरी तरफ इस समस्त राजनीतिक उठापटक के मध्य मीरा अपना अधिकांश समय स्वयं द्वारा निर्मित मुरलीधर कृष्ण के मंदिर में बिताती थी। वहाँ मीरा कृष्ण की आराधना के साथ-साथ मेवाड़ की प्रजा के सम्पर्क में भी आती एवं प्रजा के दुःख दर्द सुना करती। किंवदंतियों का आश्रय ग्रहण करें तों इस संकट की घड़ी में जब मेवाड़ की प्रजा पर करों का असहनीय बोझ लाद दिया गया था मीरा ने मेवाड़ की प्रजा की हरसंभव मदद करने का प्रयास किया यहाँ तक कि अपने गहने-जेवरात आदि भी प्रजा में बाँट दिए। मीरा के इन कार्यों ने मेवाड़ की जनता के मध्य मीरा को अत्यंत लोकप्रिय बना दिया। अलोकप्रिय महाराणा के लिए यह असहनीय था। फलतः महाराणा परिवार, पारिवारिक कलह का मंच बन गया। मीरा को जहर देकर मारने का भी प्रयास किया गया। आगे मीरा व महाराणा का यह अंतर्कलह मीरा के चित्तौड़ छोड़ने तक जारी रहा।

4.8 पारिवारिक शक्ति का मीरा के आस-पास ध्रुवीकरण

आरंभ से ही मेवाड़ की राजनीति में राठौड़ों का प्रभावशाली हस्तक्षेप रहा था। महाराणा कुंभा के समय यद्यपि मेवाड़ को राठौड़ों के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया गया था परंतु इस कृत्य से राजपूतों की शक्ति का भी विभाजन हो गया। महाराणा सांगा ने इस तथ्य को समझकर राठौड़ों से मधुर संबंध स्थापित किए एवं मेवाड़ की राजसत्ता में उन्हें महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की। इसी क्रम में महाराणा ने राठौड़ों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। मीरा का विवाह भी इसी समझ का परिणाम था। समझा जा सकता है कि मीरा ही वह सूत्र थी जो मेड़तियों राठौड़ों को मेवाड़ की राजनीति एवं राजसत्ता से जोड़ रही थी। इस तरह मीरा मेड़तियों के लिए वह आधारमंच थी जो उन्हें मेवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप करने का मौका प्रदान कर रही थी। अतः मीरा का राजनीतिक रूप से शक्तिशाली बनना एवं उसके आस-पास शक्ति का ध्रुवीकरण स्वयं मेड़तियों के हित में था।

महाराणा विक्रमादित्य की माता करमेती हाड़ा राजपूत थी। महाराणा परिवार में वह हाड़ी रानी के नाम से जानी जाती थी। महाराणा की संरक्षिका होने के नाते व्यवहार में शासन के समस्त सूत्र हाड़ी रानी के हाथ में ही थे। स्वाभाविक तौर पर मेवाड़ में हाड़ाओं का प्रभाव बढ़ने लगा परंतु मेड़तियों के लिए यह ईर्ष्या का विषय था। सांगा के मृत पुत्र भोज की पत्नी एवं मेवाड़ कुल की बड़ी बहू होने के कारण महाराणा परिवार में मीरा की प्रभावशाली उपस्थिति थी। मीरा की यह उपस्थिति हाड़ी रानी करमेती के समक्ष समानांतर सत्ता का आभास देती थी। स्वाभाविक रूप से मेड़तिया एवं मेवाड़ के अन्य सामंत जो राठौड़ों से सहानुभूति रखते थे, धीरे-धीरे महाराणा एवं हाड़ाओं के प्रभाव से मुक्त होने लगे। शक्ति महाराणा के हाथों से खिसक कर मेवाड़ राजकुल की बड़ी बहू मीरा की ओर प्रवाहित होने लगी। भक्त के रूप में मीरा की छवि एवं आम जनता में उसकी लोकप्रियता मीरा की स्थिति को और अधिक सशक्त बना रही थी। फलतः महाराणा विक्रमादित्य, उसकी माता करमेती एवं मीरा के मध्य शक्ति के लिए संघर्ष होने लगा। मीरा एवं करमेती की यही रस्साकशी वस्तुतः महाराणा विक्रमादित्य एवं मीरा के मध्य कलह की प्रमुख वजह थी।

मेवाड़ के सामंती ढाँचे का स्वरूप कुछ इस प्रकार का था कि महाराणा के प्रथम श्रेणी के सामंतों में प्रायः अलग-अलग राजपूत राजवंशों से संबंधित राजपूत सरदार थे। यथा-हाड़ा, झाला, राठौड़, चौहान इत्यादि। ये सामंत महाराणा से रक्त संबंध के आधार पर नहीं वरन् वैयक्तिक एवं पारिवारिक श्रद्धा के आधार पर जुड़े हुए थे। अतः इनमें से कोई भी सामंत महाराणा की गद्दी के उत्तराधिकार का दावा करना तो दूर की बात कल्पना तक नहीं कर सकता था। ऐसी विकल्पहीन स्थिति में अल्पवयस्क महाराणा तथा उसकी माता हाड़ी रानी करमेती एवं मेवाड़ राजकुल की बड़ी बहू मीरा में मेवाड़ की समस्त राजशक्ति निहित कर देना मेवाड़ की नियति थी। अतः राजशक्ति का मीरा के आस-पास ध्रुवीकरण एक स्वाभाविक परिणति थी। कई आलोचकों द्वारा प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि मध्यकालीन वातावरण में क्या यह संभव है कि मेवाड़ की राजशक्ति किसी स्त्री के हाथों में हो, किंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि मेवाड़ की राजशक्ति करमेती अथवा मीरा के हाथों में रहने के अलावा मेवाड़ के पास और कोई विकल्प ही नहीं था। हाड़ी रानी करमेती द्वारा मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजकर गुजरात के शासक बहादुरशाह के आक्रमण से रक्षा के निवेदन की घटना की सत्यता पर संदेह हो सकता है परंतु इससे यह तो साबित हो ही जाता है कि मीरा के पश्चात् हाड़ी रानी मेवाड़-राजशक्ति की स्वाभाविक दावेदार थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा मेवाड़ के परिवार की राजनीतिक शक्ति का मीरा व हाड़ी रानी करमेती के आस-पास ध्रुवीकरण हो रहा था।

मीरा के समय के सामंती वातावरण में राजकुल की स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। स्त्री होने के नाते निःसंदेह मीरा पर भी ये प्रतिबंध लागू थे। चित्तौड़ दुर्ग में कुंवरपदा का महल, जो कि मीरा का निवास स्थान था, की देहरी को लांघकर सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने की अनुमति राजकुल की किसी भी स्त्री को नहीं थी। सार्वजनिक समारोहों एवं उत्सवों के अवसर पर मेवाड़ के सामंत प्रायः राजमहल स्थित त्रियोलिया पोल में एकत्र होते थे। इन बैठकों में अनेक अवसरों पर राजशक्ति के भविष्य का निर्धारण होता था। मीरा का महल इस स्थल से मात्र कुछ ही दूरी पर स्थित था एवं एक दीवार द्वारा इस बैठक स्थल से विभाजित था। बिडंबना यह थी कि इसके बावजूद मीरा या राजकुल की कोई अन्य स्त्री, पुरुष सामंतों की इन सभाओं में हिस्सा नहीं ले सकती थी।

मीरा ने सामंती समाज द्वारा स्त्री पर थोपे गए प्रतिबंधों को समझा तथा भजन कीर्तन एवं कृष्ण-भक्ति के बहाने स्वयं द्वारा निर्मित कृष्ण मंदिर आने-जाने लगी। आगे चलकर यही कृष्ण मंदिर न केवल मीरा की सार्वजनिक गतिविधियों का केन्द्र बना वरन् इसी स्थल पर मीरा मेवाड़ के महत्वपूर्ण व्यक्तियों, सामंतों एवं प्रजा से संपर्क स्थापित करने लगी। भक्ति एक बहाना था, वास्तव में कृष्ण भक्ति के नाम पर मीरा सार्वजनिक जीवन में स्वयं की भागीदारी का आधार तैयार कर रही थी।

दूसरी तरफ मीरा प्रजा के मध्य एक भक्त के रूप में लोकप्रियता भी हासिल कर रही थी। मीरा के इन कृत्यों ने मीरा को न केवल प्रजा वरन् सत्ता प्रतिष्ठान में भी स्वीकार्यता दिलाना आरंभ कर दिया। परिणाम स्वरूप महाराणा परिवार की पारिवारिक शक्ति करमेती के हाथों से खिसक कर मीरा के आस-पास ध्रुवीकृत होने लगी।

4.9 महाराणा परिवार से मीरा का निष्कासन

बाबर के भारत आगमन, खानवा का युद्ध एवं महाराणा सांगा की पराजय व असामयिक मृत्यु के साथ् ही मेवाड़ का राजनीतिक घटनाक्रम तेजी से बनता -बिगड़ता है। नया महाराणा रत्नसिंह अपने ही सामंत सूर्यमल्ल के साथ द्वन्द्व युद्ध में मारा जाता है एवं मेवाड़ में शक्ति शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अंततः राजशक्ति अल्पवयस्क महाराणा विक्रमादित्य एवं उसकी माता करमेतीबाई के हाथों आ जाती है। आगे मेवाड़ राजपरिवार हाड़ा एवं मेड़तियों के आपसी संघर्ष का अखाड़ा बनता है जिसकी अंतिम परिणति मीरा व अल्पवयस्क महाराणा के मध्य परस्पर द्वेष एवं वैमनस्य के रूप में होती है। महाराणा अनेक प्रयत्नों द्वारा मीरा को मेवाड़ से निष्कासित करने का प्रयास करता है। वह विष पिलाकर, साँप एवं बिच्छुओं से डसवाकर मीरा को परेशान करके या मारकर उसे रास्ते से हटाना चाहता था। मीरा के नाम पर प्रचलित अनेक पदों में हमें इस संबंध में जानकारी मिलती है।

मेवाड़ क्षेत्र में प्रचलित किंवदंतियों का आधार ग्रहण करने पर हमें ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं जिनमें मीरा को काल-कोठरी में बंद करने से लेकर अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ देने का जिक्र है। महाराणा एवं राजमाता करमेती द्वारा मीरा पर चारित्रिक दोषारोपण के प्रयास भी किए गए ताकि मीरा चित्तौड़ दुर्ग छोड़ कर अन्यत्र कहीं चली जाए। उल्लेखनीय है कि मीरा के चितौड़ छोड़ने से मेवाड़ की राजनीति में मेड़तियों का अनावश्यक हस्तक्षेप बंद हो जाता एवं महाराणा विक्रमादित्य एवं राजमाता करमेती अधिक स्वतंत्र रूप से राज्य का संचालन कर पाते। यही वजह थी कि चरित्र हनन के प्रयास से लेकर मीरा की हत्या तक अनेक उपायों द्वारा मेवाड़ का महाराणा, मीरा को या तो चित्तौड़ से निष्कासित कर देना चाहता था अथवा उसकी हत्या, ताकि मीरा रूपी अवरोध हमेशा के लिए समाप्त हो जाए।

विक्रमादित्य के महाराणा बनने के कुछ दिनों के भीतर ही मेड़तियों एवं हाड़ाओं के आपसी संघर्ष के कारण मीरा, महाराणा एवं राजमाता करमेती के मध्य द्वैष इस हद तक बढ़ चुका था कि अब इसका किसी निश्चित परिणति तक पहुँचना आवश्यक था। मीरा को यह आभास हो चुका था कि किसी मजबूत समर्थन के अभाव में उसका चित्तौड़ दुर्ग एवं राजमहल में अधिक समय तक रुकना संभव नहीं हो पाएगा। अतः मीरा पीहर पक्ष से सैनिक एवं नैतिक समर्थन की आशा में मेड़ता की तरफ निकल पड़ी ताकि महाराणा विक्रमादित्य एवं राजमाता करमेती के विरुद्ध मेड़तिया राठौड़ों की शक्ति एवं समर्थन पा सके। दुर्भाग्यवश मीरा के मेड़ता पहुँचने से पूर्व ही मारवाड़ के शासक मालदेव का मेड़ता पर आक्रमण हो चुका था। महाराजा मालदेव का आक्रमण मेड़ता के लिए अत्यंत विनाशकारी सिद्ध हुआ। मेड़तिया राठौड़ों को पूरी तरह कुचल दिया गया। मालदेव का आक्रमण इतना विध्वंसात्मक था कि मेड़ता का राजमहल आक्रमण के कारण खंडहर में बदल गया था। मीरा चित्तौड़ से रवाना होकर जब पुष्कर नामक स्थल पर पहुँची तब उसे महाराजा मालदेव के आक्रमण का समाचार मिला। जब मीरा मेड़ता पहुँची तो उसने महलों के स्थान पर केवल खंडहरों को पाया। मीरा के लिए अब यह स्पष्ट हो चुका था कि मेड़तिया राठौड़ों की इस दमित शक्ति के बल पर अब मेवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप संभव नहीं रहा। राठौड़ों की शक्ति से वंचित शक्तिहीन मीरा के लिए चित्तौड़ दुर्ग में रुकना आसान नहीं था। विशेष तौर पर तब, जब कि स्वयं महाराणा एवं राजमाता करमेती मीरा के विरुद्ध हों एवं उसके प्रति द्वैष रखते हों। अतः मीरा ने चित्तौड़ न लौटकर वहाँ से वृंदावन जाने का निर्णय लिया। मीरा एक विदुषी एवं विद्यानुरागी महिला थी तथा चित्तौड़ दुर्ग में अपने क्रियाकलापों के कारण वह कृष्ण भक्त के रूप में प्रसिद्ध भी हो चुकी थी। अतः वृंदावन जाकर मीरा न केवल अपने विद्यानुराग एवं ज्ञानपिपासा को शांत कर सकती थी, वरन् चित्तौड़ दुर्ग के दरबारी षड्यंत्रों से स्वयं की रक्षा भी कर सकती थी। वैसे भी मेड़तियों की शक्ति के पतन के पश्चात् मीरा का चित्तौड़ दुर्ग में रुकना तथा राजमहल के महत्वपूर्ण भाग कुंवरपदा के महलों, जहाँ वह रहा करती थी, पर अधिकार जमाए रखना आसान न था। इस परिस्थिति में मीरा का वृंदावन जाने का निर्णय स्वाभाविक था। आगे मीरा वृंदावन के पोंगापंथी वातावरण से भी ऊब गई एवं वहाँ से मीरा द्वारिका चली गई। कहा जाता है कि मीरा की मृत्यु यहीं पर हुई।

मेड़तियों की शक्ति के पतन के अलावा मीरा के चित्तौड़ से निष्कासन का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण था बनवीर का चित्तौड़ आगमन। बनवीर महाराणा सांगा का दासी से उत्पन्न पुत्र था। बेअदबी तथा बदचलनी के आरोप में उसे चित्तौड़ से निष्कासित कर दिया गया था। निष्कासन के पश्चात् वह मेवाड़ के पड़ोसी राज्य मालवा में एक शरणार्थी के रूप में रह रहा था। सांगा की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ की नवीन राजनीतिक परिस्थितियों ने बनवीर को चित्तौड़ लौट आने के लिए प्रेरित किया। वह महाराणा बनने की आकांक्षा रखता था परंतु दलित पृष्ठभूमि के कारण बनवीर तब तक महाराणा नहीं बन सकता था जब तक कि राजपूती स्त्री से उत्पन्न महाराणा का एक भी पुत्र जीवित बचा रहता। अतः बनवीर ने महाराणा सांगा के सभी पुत्रों को मारकर स्वयं महाराणा बनने का निश्चय किया। यह तभी संभव था जब कि मेवाड़ के सामंतों में आपसी द्वैष एवं वैमनस्य बना रहे ताकि वे बनवीर के विरुद्ध संगठित न हो। बनवीर महाराणा विक्रमादित्य से संपर्क में था एवं उसने हमेशा मेड़तिया - हाड़ा संघर्ष को कटु बनाने का प्रत्यन किया।

महाराणा बनने में बनवीर के लिए एक अन्य बाधा थी मीरा। अतः बनवीर मीरा को चित्तौड़ से निकाल देना चाहता था ताकि वह मेवाड़ की राजनीति में मेड़तियों के हस्तक्षेप से मुक्ति पा सके। आगे चलकर बनवीर महाराणा विक्रमादित्य की हत्या कर स्वयं महाराणा बन जाता है। यह घटना सिद्ध कर देती है कि मेड़तिया-हाड़ा संघर्ष एवं मीरा के चित्तौड़ से निष्कासन में बनवीर की प्रत्यक्ष न सही परंतु अप्रत्यक्ष भूमिका अवश्य रही होगी।

अंत में हमें इस बात पर गौर करना चाहिए कि महाराणा विक्रमादित्य की इच्छा के बावजूद मीरा का चित्तौड़ से निष्कासन इतना विलंबित क्यों रहा तथा महाराणा मीरा की हत्या क्यों नहीं कर पाए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मीरा मेवाड़ की ज्येष्ठ कुलवधू होने के नाते मेवाड़ के कुछ गाँवों के राजस्व का उपभोग करती थी तथा उसे मेड़तियों की विस्तृत शक्ति का समर्थन प्राप्त था। अतः राठौड़ों की शक्ति के चलते मीरा का मेवाड़ से निष्कासन अथवा उसकी हत्या स्वयं महाराणा के लिए भी आसान कार्य नहीं था। दूसरे मेवाड़ का सामंती ढाँचा कुछ इस प्रकार का था कि महाराणा निरंकुश नहीं हो सकता था। यही बात मीरा के पक्ष को मजबूत कर रही थी।

4.10 सारांश

मीरा को कृष्ण के प्यार में पागल भक्त कवयित्री मानना ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना करना है। मीरा केवल प्रेम दीवानी भक्त कवयित्री न होकर मेवाड़ के मध्यकालीन सामंती समाज के उन प्रगतिशील मूल्यों की संवाहक थी जिन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों एवं प्रथाओं के विरुद्ध अपना प्रतिरोधी स्वर बुलंद किया। मीरा के लिए कृष्ण-भक्ति साधन थी साध्य नहीं। सती किए जाने से स्वयं की रक्षा करने के लिए मीरा ने उस युग की स्त्रियों को न सिर्फ वैकल्पिक मार्ग प्रदान किया वरन् कृष्ण-भक्ति के माध्यम से वह सीधे आमजन के सम्पर्क में भी आई। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद मीरा ने मेवाड़ में उत्पन्न शक्ति शून्यता को कुछ हद तक भरने का प्रयास किया तथा राजनीति में सक्रिय भूमिका अदा कर मेवाड़ की जनता के हित संवर्द्धन का यथासंभव प्रयास किया।

दुर्भाग्यवश मेड़तियों की शक्ति के पतन के साथ ही महाराणा परिवार तथा उसकी आंतरिक राजनीति में मीरा की सक्रियता की सारी संभावनाएँ समाप्त हो गईं। अंततः मीरा को चित्तौड़ दुर्ग छोड़ना पड़ा एवं राजनीतिक मोर्चे पर मीरा व मेड़तियों की असफलता सुनिश्चित हो गई तथापि सांस्कृतिक मोर्चे पर मीरा के अवदान ने हमेशा-हमेशा के लिए उसे अविस्मरणीय बना दिया। निःसंदेह मीरा के इस अवदान के लिए पूरा भारतीय समाज व स्त्रियाँ हमेशा उसकी ऋणी रहेंगी।

4.11 अभ्यास प्रश्न

1. वे कौन सी कुरीतियाँ एवं प्रथाएँ थी जिनके विरुद्ध मीरा ने प्रतिरोध का साहस दिखाया था?
2. क्या मीरा कृष्ण के प्रेम में पागल भक्त थी? यदि नहीं तो, मीरा के चरित्र के अन्य पक्षों का अंकन कीजिए।
3. मीरा द्वारा कृष्ण भक्ति के क्या कारण थे? कृष्ण भक्ति ने मीरा को किस प्रकार लोकप्रिय बनाया?
4. मीरा और महाराणा विक्रमादित्य के मध्य संघर्ष के क्या कारण थे? साथ ही, उन कारणों पर भी प्रकाश डालिए जिनकी वजह से मीरा को अंततः चित्तौड़ दुर्ग छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

इकाई 5 भक्ति आन्दोलन में मीरा का महत्व

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भक्ति आन्दोलन का उदय

5.3 भक्ति का स्वरूप

5.4 भक्ति आन्दोलन के प्रेरक आचार्य

- 5.4.1 रामानुजाचार्य
- 5.4.2 मध्वाचार्य
- 5.4.3 विष्णुस्वामी
- 5.4.4 निम्बार्काचार्य

5.5 भक्ति आन्दोलन की प्रमुख धाराएँ

- 5.5.1 निर्गुण भक्ति या संतमत
- 5.5.2 सूफ़ी सम्प्रदाय
- 5.5.3 कृष्ण भक्ति धारा
- 5.5.4 राम भक्ति धारा

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भक्ति आन्दोलन के उदय और विकास के बारे में जान सकेंगे,
- भक्ति की प्रमुख धाराओं से परिचित हो सकेंगे,
- भक्ति आन्दालेन में मीरा का स्थान निर्धारित कर सकेंगे, और
- भक्ति के स्वरूप और मीरा की भक्ति के बारे में जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिसे भक्ति आंदोलन कहा जाता है वह कोई ऐसा संगठित प्रयास नहीं था जो किसी एक सर्वमान्य सिद्धांत पर टिका हो और सचेत रूप से गढ़ा गया हो। वास्तव में यह भिन्न-भिन्न सामाजिक दृष्टियों और अनेक वैचारिक आधारों को लेकर चलने वाले अनेक धार्मिक आंदोलनों का एक सामूहिक नाम है। वैदिक काल में जिस धार्मिक विचारधारा का विकास हुआ उसमें आगे चलकर परिवर्तन आया। धार्मिक कर्मकाण्डों और अंधविश्वासों के कारण उसमें विकृतियाँ आती गईं। इन बुराइयों को दूर

करने के उद्देश्य से बुद्ध एवं महावीर द्वारा चलाए गए आंदोलन उभरे लेकिन इनमें भी कई सम्प्रदायों ने जन्म लिया और उन सम्प्रदायों की उत्पत्ति के कारण ये आंदोलन भी विकृतियों के शिकार हुए। नाथों और सिद्धों ने अपने-अपने तरीकों से धार्मिक सुधार का प्रयास किया। दक्षिण के आलवार और अडियाल सन्तों द्वारा शुरू किया गया आंदोलन ही भक्ति आंदोलन के रूप में परिणत हो गया।

भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों पर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने विचार किया है। इन्होंने भक्ति आंदोलन को आदि से अंत तक, निर्गुण से लेकर सगुण तक समझने की चेष्टा की है। साहित्य के इतिहासकारों ने पारंपरिक हिन्दू समाज के अतीत में झाँकने के साथ-साथ उसके अंदर चल रहे वैचारिक विमर्श पर भी दृष्टिपात से किया है और उसके आधार पर अपने निष्कर्षों को स्थापित किया है।

भक्ति आंदोलन में मीरा का सगुण भक्तिधारा के कृष्णभक्ति काव्य में विशेष महत्व है। उनकी कविता में सगुण भक्ति की चिन्तन पद्धति और दृष्टियों को हम देख सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप भक्ति आंदोलन के उदय, विकास तथा भक्ति की धाराओं का अध्ययन करने के साथ-साथ मीरा की भक्ति के स्वरूप की भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 भक्ति आन्दोलन का उदय

अब तक आपने मीरा के जीवन, उनके परिवार के बारे में अध्ययन कर लिया है। इस इकाई में आप भक्ति आन्दोलन और भक्ति आन्दोलन में मीरा के होने की सार्थकता का अध्ययन करेंगे। हमारे मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर हिन्दी में भक्ति काव्य का प्रारंभ कब और कैसे हुआ? सबसे बड़ी बात तो यह भी है कि भक्ति आन्दोलन सिर्फ हिन्दी साहित्य का आन्दोलन ही नहीं था, वरन् वह सही अर्थों में अखिल भारतीय आन्दोलन था। "भक्ति द्राविड़ उपजी, लाए रामानंद" अर्थात् भक्ति का उदय द्रविड़ में अर्थात् दक्षिण भारत में हुआ तथा इसे रामानंद उत्तर भारत में लेकर आए। दक्षिण में यह भक्ति की धारा कैसे पनपी, कब पनपी और उत्तर में यह कैसे पहुँची, इस पर विचारकों ने कई दृष्टियों से विचार किया है। भक्ति आन्दोलन के उद्भव और विकास पर विचार करते हुए जार्ज ग्रियर्सन ने कहा है यह "बिजली की चमक के समान अचानक समस्त धार्मिक मतों के अन्धकार के ऊपर एक नई बात" की तरह फैल गया। इस आन्दोलन के दौरान, "हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आन्दोलनों से कहीं अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के आन्दोलन से अधिक विशाल है, क्योंकि इसका प्रभाव आज भी वर्तमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेग का विषय हो गया था।" ग्रियर्सन और अन्य प्राच्य विद्याविद अंग्रेजों ने इसे ईसाइयत का प्रभाव बताया। इस मत को आज स्वीकार नहीं किया जाता।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति आन्दोलन के उदय के कारणों पर विचार करते हुए उसे मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया कहा है। उन्होंने कहा, "देश में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उनके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम-साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छायी रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।"

"कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गए। प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने रखकर भक्त कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के इस मत का खण्डन किया। यदि शुक्ल जी के इस मत को मान लिया जाए तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि "हिन्दी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति" की सम्पत्ति है। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उत्तरी भारत में प्रकट होना चाहिए था। जबकि भक्ति का उदय दक्षिण भारत में पहले हुआ और फिर उत्तर में पहुँची। इसलिए द्विवेदी जी ने जोर देकर कहा कि "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।" द्विवेदी जी इसी कारण भक्ति साहित्य को भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास मानते हैं। वे कहते हैं - "कुछ विद्वानों ने इस भक्ति-आंदोलन को हारी हुई हिंदू जाति की असहाय चित्त की प्रतिक्रिया के रूप में बताया है। यह बात ठीक नहीं है। प्रतिक्रिया तो जातिगत कठोरता और धर्मगत संकीर्णता के रूप में प्रकट हुई थी। उस जातिगत कठोरता का एक परिणाम यह हुआ कि इस काल में हिन्दुओं में वैरागी साधुओं की विशाल वाहिनी खड़ी हो गई, क्योंकि जाति के कठोर शिकंजे से निकल भागने का एकमात्र उपाय साधु हो जाना ही रह गया था। भक्तिवाद ने इस अवस्था को सँभाला और हिन्दुओं में नवीन और उदार आशावादी दृष्टि प्रतिष्ठित की। चौदहवीं शताब्दी के बाद हिन्दी साहित्य की मूल प्रेरणा भक्ति ही रही। इसके पूर्ववर्ती साहित्य में यह नहीं है, इसीलिए उसमें न तो किसी प्रकार का स्पंदन दिखाई देता है और न वक्तव्य-वस्तु की कोई ताजगी। चौदहवीं शताब्दी के बाद का हिन्दी साहित्य अत्यंत संवेदनशील प्राणधारा से उद्वेलित है और महान् आदर्शों से अनुप्राणित है।"

5.3 भक्ति का स्वरूप

विद्वानों का मत है कि भक्ति की उत्पत्ति "भज्" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है भजना। यह "परमप्रेमरूपा" और "अमृत स्वरूपा" है जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। वैसे तो भक्ति संबंधी चिंतन का प्रारंभ वेदों से मानने की परंपरा भी मिलती है परन्तु अधिकतर विद्वान इस मत से सहमत हैं कि इसका संबंध "भागवत पुराण" से है। इसलिए इसे भागवत धर्म भी कहा जाता है। अपने विषय को समझने के लिए आपको भक्ति संबंधी कुछ बुनियादी सिद्धान्तों को जान लेना चाहिए। अतः विभिन्न आचार्यों और विद्वानों ने अपने ग्रंथों में जो जानकारियाँ दी हैं, उन्हें हम संक्षेप में यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इनकी सहायता से आप भक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य को समझ पाएँगे।

भारतीय चिंतन पद्धति में भगवान तक पहुँचने के तीन मार्ग स्वीकृत हैं - योग, ज्ञान और भक्ति मार्ग। मीरा ने अपने लिए भक्ति मार्ग चुना। इसलिए इस मार्ग के विषय में जानकारी होना आवश्यक है। भक्ति का आधार यह मानता है कि भगवान और भक्त का रिश्ता व्यक्तिगत है, निजी है। उसी परमेश्वर ने इस जगत का निर्माण किया है। वह अनन्त और अविनाशी है। जीव उसका अंश है। अतः भक्त और भगवान का रिश्ता नैसर्गिक है। जब भी जीवों को कष्ट होता है तब भगवान अवतार लेते हैं। अवतार रूप में किए गए कार्य भगवान की लीला माने जाते हैं।

अब इस अवतारवाद को समझने की जरूरत है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस संदर्भ में लिखते हैं कि "भक्ति के लिए जो बात नितांत आवश्यक है वह है भगवान के ऐसे रूप की कल्पना जिसके साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया जा सके। .... अवतार उस संबंध के लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि मध्ययुग के प्रायः सभी धार्मिक संप्रदायों ने किसी–न–किसी रूप में अवतार की कल्पना अवश्य की है।" आगे वे अवतारों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -"भगवान के तीन प्रकार के अवतार होते हैं - पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार। पुरुषावतार भी तीन प्रकार के हैं। जो महत्त्व के सृष्टिकर्ता हैं, उन्हें प्रथम पुरुष, जो निखिल ब्रह्माण्ड अर्थात् समष्टि के अन्तर्यामी हैं, उन्हें द्वितीय पुरुष और जो सर्वभूत अर्थात् व्यष्टि के अन्तर्यामी हैं, उन्हें तृतीय पुरुष कहते हैं। ... गुणावतार तो प्रसिद्ध ही हैं। सत्त्वगुण से युक्त अवतार ब्रह्मा, रजोगुण से युक्त विष्णु और तमोगुण से युक्त अवतार रुद्र या शिव हैं।

लीलावतार चौबीस हैं - चतुः सन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष, हंस, ध्रुवप्रिय, ऋषम, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, बुद्ध और कल्कि।"

मीरा अवतारवाद में विश्वास रखती हैं। वे कृष्ण को अपना मानकर, अपना दुःख दर्द बताती हैं। वह कहती हैं कि मेरी आँखें कृष्ण की प्यासी है, स्वयं तो जाकर द्वारका में बस गए और यहाँ सभी लोग मेरा मजाक उड़ाते हैं। मुझे एक घड़ी भी आवड़े (मन नहीं लगता) नहीं है। तुम्हारे बिना मुझे न तो नींद आ रही है न खाना अच्छा लग रहा है और सबसे बड़ी बात कि " मेरा दरद न जाणे कोय " के प्रति मीरा का यह संबोधन किसी दूरस्थ, अगम्य ईश्वर के प्रति नहीं है अपितु यह ईश्वर तो उनका अपना है। उससे मीरा व्यक्तिगत संबंध मानती हैं, यही कारण है कि वह अपने सारे दुःख बताती जाती हैं। यह संबंध भावना मीरा में भक्ति आन्दोलन से आई है। यदि अन्य भक्त कवियों पर दृष्टि डालें तो हम पाएँगे कि यह व्यक्तिगत संबंध भावना सभी भक्त कवियों में भी मिलती है, सिर्फ मीरा में ही नहीं है। इसी तरह मीरा कृष्ण के विविध अवतारों का भी ज़िक्र करती हैं, उनमें विश्वास करती हैं। "पत्थर की तो अहिल्या तारी, बनके बीच पड़ी " यह प्रकरण अवतारवाद में विश्वास के कारण ही आया है। उसे मीरा अकाट्य, विश्वसनीय तर्क के रूप में प्रस्तुत करती हैं। ऐसे पदों का यदि विश्लेषण किया जाए तो हम देखेंगे कि मीरा परमात्मा के समर्थ, महिमाशाली व्यक्तित्व में अटूट विश्वास करती है। ऐसा अटूट, अगाध विश्वास परमात्मा से ही हो सकता है।

भक्ति आंदोलन के सभी कवियों की तरह मीरा भी यह मानती हैं कि ईश्वर तो कोई भी कार्य सहज ही कर सकते हैं और यह उनकी लीला का विस्तार है। शास्त्रों के अनुसार लीला दो प्रकार की होती है - प्रकट और अप्रकट लीला। इस काल के कवियों ने भगवान की प्रकट लीला का ही गान किया है। वृन्दावन में कृष्ण और अयोध्या में राम की लीला प्रकट लीला ही है। फिर परमपिता परमेश्वर मधुर है, सुन्दर है, ऐश्वर्यशाली है। सूर ने कृष्ण के सौन्दर्य का अद्‌भुत वर्णन किया है। तुलसीदास ने राम के "शील, शक्ति और सौन्दर्य" को चित्रित किया है। मीरा कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध है -

तुम भये गिरवर मैं भई मोरा,
तुम भये चंदा भई मैं चकोरा।।
तुम भये मोती मैं भई धागा,
तुम भये सोना, भई मैं सुहागा।।
बाई मीरा के प्रभु ब्रज के बासी,
तुम ठाकुर मैं तेरी दासी।।

यहाँ मीरा और प्रभु का रिश्ता अटूट है। इस अटूट रिश्ते का अभिमान मीरा के पदों में मिलता है। यदि यह विश्वास डिग जाए, तो कविता बिखर जाएगी। कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मीरा कृष्ण के परंपरागत रूप को चित्रित करती हैं -

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।।

कृष्ण ने सिर पर मोर का मुकुट पहन रखा है, शरीर पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा है, उनके गले में वैजयन्ती की माला है। मुरली वाला मोहन वृन्दावन में गायें चरा रहा है। कृष्ण का यह अतिपरिचित चित्र मीरा में इस भाव से आता है, मानो यही कृष्ण का वास्तविक रूप है या दूसरे शब्दों में कहें तो मीरा को कृष्ण का यही रूप मोहित करता है।

मीरा अवतारवाद से जुड़े हुए पौराणिक प्रसंगों पर विश्वास करती हैं तथा अपने मत की पुष्टि करने के लिए उन प्रसंगों का उपयोग करती हैं। मीरा अवतारवाद की स्थापना नहीं करती, उसे स्थापित मानकर अपनी बात कहती हैं। मीरा कहती हैं कि गिरधर नागर के सामने जिसने भी गर्व किया, वही हारा। इसलिए मैं तो मानती हूँ कि वही मेरे प्राणों के आधार हैं -

गरब किया रतनागर सागर, जल खारा कर डारा।
गरब किया लंकापति रावण, टूक टूक कर डारा।
गरब किया चकवे चकवी ने, रैन बिछोहा डारा।
इन्दर कोप किया बृज ऊपर, नख पर गिरधर धारा।।

इतने सारे उदाहरणों के बाद भी यदि कोई भगवान के सामने गर्व करता है तो उसे मूर्ख ही मानना चाहिए। मीरा मानती है कि नंदलाल कृष्ण तो प्रेम से ही मिल सकते हैं। यदि प्रतिदिन नहाने से भगवान मिलते हों तो पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं को ही मिलेंगे, यदि फल फूल खाने से हरि मिलते हैं तो बन्दरों को मिलने चाहिए। वे तो पका हुआ अन्न नहीं खाते -

"मीरा कहै बिन प्रेम के, नहीं मिलै नँदलाला"।

विचारकों का मत है कि भक्ति दो प्रकार की होती है - वैधी और रागानुगा। कर्त्तव्य बुद्धि से निश्चित किए गए नियमों से की गई भक्ति वैधी भक्ति कहलाती है और जो मन से, सहज वृत्ति से अपने आप पैदा हो जाती है वह रागानुगा भक्ति कहलाती है। आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि इन भक्तों के लिए ये दस आचार निषिद्ध हैं -

i) बहिर्मुख लोगों का संग अर्थात् अनैतिक, अविश्वासी और मिथ्याचारी लोगों का संग

ii) शिष्य, संगी, भृत्य या बान्धवों द्वारा किया हुआ अनुबन्ध

iii) महारम्भ का उद्यम

iv) नाना ग्रंथों, कलाओं और वाद्यों का अभ्यास

v) कृपणता

vi) शोकादि से वशीभूत होना

vii) अन्य देवता के प्रति अवज्ञा

viii) जीवों को उद्विग्न करना

xi) सेवापराध अर्थात् यत्न का अभाव, अवज्ञा, अपवित्रता, निष्ठा का अभाव और गर्व

तथा

x) कामापराध अर्थात् साधु-निन्दा, शिव और विष्णु का पृथकत्व चिन्तन, गुरु अवज्ञा, देवादिनिन्दा, नाम-महात्म्य के प्रति अनास्था, हरिनाम की नानाविध अर्थकल्पना, नाम-जप और अन्य शुभ कर्मों की तुलना करना, अश्रद्धालु की नामोपदेश, नाम के प्रति अप्रीति।

वैधी भक्ति के दो मूल तत्त्व हैं - (1) भगवान ही एकमात्र जीवों का स्मर्त्तव्य है और जो उनके सुमिरन में सहायक है, वे ही कर्म भक्त के कर्त्तव्य हैं, - चाहे वह कुछ भी क्यों न हों (2) भगवान को भूल जाना ही अमंगल है और अमंगल के सहायक सभी कार्य त्याज्य हैं। वैधी भक्ति के पाँच अंग इस प्रकार हैं -

1) भगवान के विग्रह (मूर्ति) की सेवा

2) कथा - सत्संग

3) साधुसंग

4) नामकीर्तन

5) ब्रजवास

मीरा की कविता में अभिव्यक्त बातों का भक्ति के इस शास्त्र से गहरा संबंध है। मीरा, जो मिथ्याचारी लोगों के संग-साथ का विरोध करती है, माता-पिता और कुल की मर्यादा को छोड़ती है, उसका संबंध भक्ति संबंधी इन मान्यताओं से है। वैधी भक्ति की कई बातों के साथ मीरा रागानुगाभक्ति का पालन करती है। वे कृष्ण से प्रेम करती हैं और यही उनके राग का आधार है।

5.4 भक्ति आन्दोलन के प्रेरक आचार्य

भक्ति आन्दोलन के उदय से पूर्व देश में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव था। शंकराचार्य, कुमारिल, उदयन आदि मीमांसक और वेदान्तिक आचार्यों ने भारत से बौद्ध धर्म के निष्कासन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दक्षिण में शंकराचार्य के मत के विरोध में नए आचार्य आए। उत्तर में भक्ति आन्दोलन के प्रसार में इन आचार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

5.4.1 रामानुजाचार्य

शंकराचार्य के मायावाद के विरुद्ध दक्षिण में सबसे पहले रामानुजाचार्य खड़े हुए। इनका मत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है। इन्होंने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की। इनकी शिष्य परंपरा में रामानन्द हुए जो भक्ति को दक्षिण से उत्तर में लेकर आए। इनके बारह प्रधान शिष्य माने जाते हैं - रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती और सुरसुरी। इन्होंने रामनाम का प्रचार किया। इन्हीं के भक्तों की परंपरा में गोस्वामी तुलसीदास हुए, नाभादास हुए। इस तरह भक्ति आन्दोलन की दो धाराओं निर्गुण भक्ति और राम भक्ति का संबंध इस सम्प्रदाय से है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि रैदास को मीरा के गुरु के रूप में जाना जाता है। इस तरह मीरा का संबंध भी रामानुजाचार्य की परंपरा से जुड़ जाता है।

5.4.2 मध्वाचार्य

इनका मत द्वैतवाद कहलाता है। इन्होंने ब्राह्म सम्प्रदाय की स्थापना की। विचारकों का मानना है कि ये पहले शैव थे, जो बाद में वैष्णव बन गए। कहते हैं कि चैतन्यदेव पहले इसी सम्प्रदाय में थे, बाद में गौड़ीय वैष्णव मतवाद के समर्थक बन गए। ऐसा भी माना जाता है कि चैतन्य सम्प्रदाय में प्रसिद्ध भक्त जीवगोस्वामी हुए थे और मीरा ने सबसे पहले इनसे ही दीक्षा ग्रहण की थी। वृन्दावन में मीरा द्वारा जीवगोस्वामी से मिलने जाने की कथा आप इस खंड की पहली इकाई में पढ़ चुके हैं।

5.4.3 विष्णुस्वामी

इनके मत को शुद्धाद्वैत कहा जाता है। ये रुद्र सम्प्रदाय से संबद्ध थे। विष्णु स्वामी ने विष्णु सम्प्रदाय की स्थापना की। आगे चलकर इस परंपरा में वल्लभाचार्य जैसे प्रसिद्ध भक्त हुए। विष्णु सम्प्रदाय बाद में वल्लभ सम्प्रदाय में मिल गया क्योंकि वल्लभाचार्य ने विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों को लेकर पुष्टि मार्ग की स्थापना की। वल्लभाचार्य के पुत्र का नाम गोसांई विट्ठलनाथ था। इन दोनों पिता-पुत्र के आठ शिष्य माने जाते हैं, जिन्हें लेकर इन्होंने अष्ट छाप की स्थापना की। इनमें वल्लभाचार्य के चार शिष्य ये हैं - सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास और कृष्णदास।

विट्ठलनाथ के शिष्य ये हैं - नन्ददास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। गोसांई विट्ठलनाथ के पुत्र गोसांई गोकुल नाथ ने "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" और "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" नामक दो अत्यंत महत्वपूर्ण गद्य-ग्रंथों की रचना की। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के लिए यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी माने जाते हैं। इसी परंपरा में आगे चलकर रसखान हुए। इन्होंने हिन्दी में कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा का भव्य प्रारंभ किया। इसी सम्प्रदाय के कारण एक ओर ब्रजभाषा काव्य भाषा के रूप में स्थापित हुई, जो आगे चलकर रीतिकाल तक हिन्दी अंगों की काव्य भाषा रही तथा दूसरी ओर राधा और कृष्ण के रूप में हिन्दी कवियों को नायक-नायिका मिले। मीरा इसी कृष्ण भक्त काव्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि यदि आप "हिन्दी साहित्य का संबंध हिन्दू जाति के साथ ही" अधिक मानते हैं तो इससे दो स्वाभाविक निष्कर्ष निकलते हैं - "एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की सम्पत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान -पतन के साथ अङ्गाङ्गि -भाव से सम्बद्ध है; और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिंताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आपमें कोई विशेष महत्व नहीं रखता।" द्विवेदी इन दोनों बातों का प्रतिवाद करते हैं। इसके लिए द्विवेदीजी भारतीय धर्म-दर्शन के पिछले हजार वर्षों के इतिहास का पुनः विश्लेषण करते हैं।

हिन्दी आलोचकों ने भक्ति आंदोलन के विकास में बौद्ध धर्म की भूमिका, नीची समझी जाने वाली जातियों के उत्थान, धार्मिक ग्रन्थों की पुनर्व्याख्या आदि का भी उल्लेख किया है।

5.4.4 निम्बार्काचार्य

इनका मत द्वैताद्वैत कहलाता है। इन्होंने सनकादिक सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होंने श्रीकृष्ण के संकीर्तन को विशेष महत्व दिया। दैन्य भाव से श्रीकृष्ण की कृपा मिलती है और प्रेम मूलक भक्ति से जीवमात्र का कल्याण होता है। इस सम्प्रदाय में आगे चलकर गोस्वामी हितहरिवंश हुए जिन्होंने पंद्रहवीं शताब्दी में राधा-वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। इस संप्रदाय की विशेषता यह है कि संप्रदाय में राधा प्रमुख है, श्रीकृष्ण नहीं। यहाँ राधा परम

प्रकृति हैं और कृष्ण उनपर आश्रित पुरुष हैं। राधावल्लभ, श्रीकृष्ण का ही उपास्य नाम है। इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध तीर्थ नाथ द्वारा में स्थित है। ऐसा माना जाता है कि उदयपुर के महाराणा के प्रभाव में होने के कारण इस सम्प्रदाय के किसी आचार्य ने मीरा को अपशब्द कहे थे। इस तरह उत्तर भारत में भक्ति के प्रचार-प्रसार में लगे हुए इन प्रमुख सम्प्रदायों के साथ मीरा का सम्पर्क रहा है। मीरा का मानसिक जगत इन आचार्यों की स्थापित परंपरा में निर्मित हुआ।

5.5 भक्ति आंदोलन की प्रमुख धाराएँ

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आपने भक्ति आंदोलन की प्रमुख धाराओं का अध्ययन एम.एच.डी-06 में किया होगा। इन धाराओं का यहाँ हम मीरा के संदर्भ में पुनः अध्ययन करना चाहेंगे। ये धाराएँ हैं - निर्गुण भक्ति या संतमत, सूफ़ी काव्यधारा, कृष्ण भक्ति और रामभक्ति काव्य परंपरा।

5.5.1 निर्गुण भक्ति या संतमत

हिन्दी में निर्गुण धारा के सबसे समर्थ कवि कबीर माने जाते हैं। कबीर हिन्दी में एकाएक नहीं हुए थे। कबीर की मान्यताओं की परंपरा रही है। इस परंपरा से जुड़े हुए तथ्यों को फिर से जानलेना आपके लिए उपयोगी होगा। विचारकों का मानना है कि भारत से बौद्ध धर्म के निष्कासन के बाद भी जनता पर उनका प्रभाव बना रहा। बौद्ध धर्म हीनयान और महायान के बीच बँट गया। फिर बौद्ध धर्म का संबंध शैव मत से हो गया। इस परंपरा से भारत वर्ष में नाथ संप्रदाय, सिद्ध, कापालिक, कौल, शाक्त आदि अनेक संप्रदाय बने। इन सम्प्रदायों से निर्गुण परंपरा का गहरा रिश्ता रहा है। इन संप्रदायों में आपस में विवाद तो था ही, साथ ही ये एक दूसरे को अपने भीतर समाहित करने का प्रयास भी कर रहे थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सम्प्रदायों का परिचय दिया है। उनके अनुसार, "शाक्त मत के अनुसार चार प्रधान आचार हैं - वैदिक, वैष्णव, शैव और शाक्त। शाक्त आचार भी चार प्रकार के हैं- वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। ... .वैदिक आचार से वैष्णव श्रेष्ठ है, उससे गाणपत्य, उससे सौर, उससे शैव और शैव आचार से भी शाक्त आचार श्रेष्ठ है। शाक्त आचारों में भी वाम, दक्षिण और कौल उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं और कौलमार्ग ही अवधूत मार्ग है।"

अवधूत और योगियों का संबंध नाथों, सिद्धों और कापालिकों से है। कापालिकों के बारह आचार्य माने जाते हैं - आदिनाथ, अनादि, काल, अतिकाल, कराल, विकराल, महाकाल, कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, वीरनाथ, भूतनाथ और श्रीकण्ठ। इनके भी बारह शिष्य प्रसिद्ध हैं - नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, मीननाथ, गोरक्ष, चर्पट, अवद्य, वैरागी, कन्थाधारी, जालंधर और मलयार्जुन। इसी तरह द्विवेदी जी ने नौ नाथों और 84 सिद्धों की सूची भी दी है - गोरखनाथ, जालन्धर नाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्र नाथ। इस तरह इनकी सूची देखें तो एक ही नाम कई सम्प्रदायों में मिलते हैं। 84 सिद्धों में इन नाथों में से भी कई महात्माओं के नाम शामिल हैं। इन मतों का बड़ा बारीक शास्त्र है। योगमत के इस शास्त्र को जानने के लिए अलग से आपको अध्ययन करना चाहिए।

इन शास्त्रों को जानने वाले योगियों का वर्णन भक्ति आन्दोलन के कई कवियों ने किया है। सूफ़ी कवि मालिक मुहम्मद जायसी की कृति "पद्मावत" में राजा रत्नसेन योगी बन जाता है। इस संदर्भ में "नाथ संप्रदाय" में आचार्य द्विवेदी ने लिखा - "अनुमान किया जा सकता है कि योगियों का जो वेश आज है वह दीर्घ काल से चला आ रहा है। योगी वेश धारण करने वाले रत्नसेन राजा ने हाथ में किंगरी, सिर पर जटा, शरीर में भस्म, मेखला,

शृंगी, योग को शुद्ध करने वाला घँघारीचक्र, रुद्राक्ष और अधर (आसन का पीढ़ा) धारण किया था। कन्था पहनकर हाथ में सोटा लिया था और "गोरख, गोरख, की रट लगाता हुआ निकल पड़ा था, उसने कान में मुद्रा, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल, कन्धे पर बघम्बर (आसन के लिए), पैरों में पाँवरी, सिर पर छाता और बगल में खप्पर धारण किया था। इन सबको उसने गेरुए रंग में रँगकर लाल कर लिया था।"

भ्रमरगीत प्रकरण में सूरदास की गोपियाँ भी इन योगियों की विचित्र वेशभूषा का मजाक उड़ाती हैं। जायसी योगियों के पक्ष में उनकी छवि का वर्णन करते हैं, जबकि सूरदास उनसे अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। तब भी, दोनों उनके एक जैसे रूप को चित्रित करते हैं -

हमरे कौन जोग व्रत साधै
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को इतनो अवराधे,
जाकी कहूँ थाह नहीं पैए, अगम, अपार, अगाधे।

हिन्दी निर्गुण संतों की दो मूल मान्यताएँ हैं, जिनके आसपास उनकी शेष मान्यताएँ निर्मित होती हैं -

i) वेद प्रमाण नहीं है, अनुभव प्रमाण है। कागद की लेखी आँखों की देखी से अलग है तथा सही है। पुस्तकीय ज्ञान, सिद्धान्त को तर्क के रूप में इस्तेमाल नहीं कर सकते। चूँकि ये संत निरक्षर थे, शास्त्र ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। जब शास्त्र ही नहीं आता, तो शास्त्रार्थ कैसे किया जा सकता है। कबीर आदि ने इस मत का जोरदार खंडन किया। यहाँ तक कि उस भाषा -संस्कृत का विरोध किया, जिसे सिर्फ "पंडित" ही पढ़ सकता है, वही समझ सकता है, वही व्याख्या कर सकता है। यही नहीं उन्होंने "पंडित" की सत्ता को भी चुनौती दी। उनके अनुसार पंडित तो भरमाता है, जनता को मूर्ख बनाए रखता है। वह तो चाहता है कि लोग मूर्ख बने रहें। इसलिए इन संतों ने बोलचाल की "सधुक्कड़ी" भाषा में कविता लिखी। कबीर की भाषा न पूरी तरह से अवधी है, न ब्रज और न भोजपुरी। वह पूरे हिन्दी प्रदेश में समझ आने वाली सामान्य भाषा है। जब वेद प्रमाण नहीं है तो कुरान भी प्रमाण नहीं है। जब मंदिर कुछ नहीं है तो मस्जिद भी कहाँ ईश्वर का घर है? पंडित नहीं तो मौलवी भी नहीं। काजी, मुल्ला आदि की कोई पृथक आध्यात्मिक सत्ता नहीं है। कबीर, दादू, रैदास आदि की इस तरह की साखियों और पदों का आपने अध्ययन किया होगा।

सूरदास भ्रमरगीत में जिस निर्गुण का खंडन करते हैं, उसका दर्शन योग का दर्शन है, उस साधक की छवि योगी की है, उसके वस्त्राभूषण भी वही हैं।

गिरधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै,
आसन, पवन, भूति, मृगछाला ध्याननि को अवराधै,
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठ को बाँधै,

कबीरदास ने भी इन्हें योगियों, अवधूतों से बोधित किया है। इनके बारे में तो यहाँ तक कहा जाता है कि कबीर में इन्हें पूर्ववर्ती योगियों की वाणी थोड़े-बहुत हेर फेर के बाद ज्यों की त्यों मिलती है इस तरह के कई पद कबीर के नाम से मिलते हैं, जो बातें गोरखनाथ के नाम से प्रचलित हैं वे कबीर, दादू आदि निर्गुण भक्तों में यथावत मिलती है।

मीरा अपनी कविता में जोगी को संबोधित करती है और मीरा का यह जोगी कृष्ण का प्रतिरूप है। मीरा कहती है कि वह जोगी परदेश चला गया है और जबसे बिछुड़ा है, तबसे पुनः मिला नहीं है, न कोई संदेश दिया है -

या तन ऊपर भसम रमाऊँ, खार करूँ सिर केस।
भगवाँ भेष धरूँ तुम कारण, ढूँ ढूँ चारुं देस।

मीरा जानती है कि जोगी से प्रेम करने से दुःख ही होता है वह कितना सुन्दर है, कितना ऐश्वर्य शाली है -

ऐसी सूरत या जग माहीं, फेरि न देखी सोई।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलिया आनँद होई।।

इस जोगी से मिले बिना सुख नहीं मिलता सारे संसार में घूम चुकी हूँ और उसके विरह में "बावरी" हो गई हूँ, यहाँ तक कि -

मीरा दासी भई है पंडुरी, पलट्या काला केस।

ii) दूसरी बात यह है कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं। जब सभी समान हैं तो ब्राह्मण श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। इसलिए जाति-पाँति की, ऊँच नीच की प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था सही नहीं है। राजा क्या होता है, धनी क्या होता है, ब्राह्मण क्या होता है? कबीर आदि कवियों ने श्रेष्ठता की सभी सत्ताओं का विरोध किया। अपनी असहमति दर्ज की।

इन मान्यताओं के पक्के समर्थक होने के कारण अवतारवाद का भी विरोध किया। दशरथ पुत्र राम के अस्तित्व से इन्कार किया। सिर मुँड़ाना, मूर्ति पूजा आदि का भी विरोध किया। सिर्फ ईश्वर से प्रेम सच्चा है। शेष सब माया है। प्रश्न सिर्फ एक है कि इस भवसागर से मुक्ति कैसे मिल सकती है। जो जात-पांत को मानता है वह ईश्वर भक्त कैसे हो सकता है। ये मत यदि योगमत में मिलता है, नाथ पंथ में मिलता है, सिद्धों में मिलता है, कौल, कापालिक और शाक्त सम्प्रदाय में मिलता है तो कबीर, दादू, रैदास उसकी "साखी" कहते हैं, समर्थन करते हैं।

कबीर आदि ने जिस भक्ति पद्धति को अपनाया उसमें अवतारों की कथा नहीं हो सकती, अतः उन्होंने कथा पर आधारित महाकाव्यों की रचना नहीं की, वरन् साखी और पदों की रचना की। पदों को संगीतमय बनाया। ऐसे वक्तव्य दिए जो लोक-स्मृति में जीवित रह सके। काव्यात्मक उक्तियों के साथ सीधी बात सीधे ढंग से कहने की कला विकसित की।

इन संतों का सम्पर्क मीरा से था। राणा का विरोध करने की वैचारिक शक्ति मीरा को इन निर्गुण संतों से मिली हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए। मीरा हालाँकि कृष्ण भक्त थी। कृष्ण के अवतार में विश्वास करती थी। पौराणिक कथाओं को भी उचित मानती थी, परन्तु मीरा ने कहीं भी जात-पाँत को उचित नहीं ठहराया। कहीं भी वर्णाश्रम धर्म का समर्थन नहीं किया। वे मनुष्य की समानता का समर्थन करती थीं।

5.5.2 सूफ़ी सम्प्रदाय

भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् सूफ़ी संत आए। सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति अनेक प्रकार से मानी जाती है। अधिकांश विचारकों का मत है कि सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ़ शब्द से हुई है, जिसका अर्थ ऊन है। यह शब्द पहले पहले संन्यासी जीवन बिताने वाले मुस्लिम साधकों के लिए प्रयुक्त हुआ। सूफ़ी-सम्प्रदाय का प्रवेश इस देश में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (बारहवीं शताब्दी) के समय से माना जाता है। सूफ़ियों के चार सम्प्रदाय यहाँ आए हैं - चिश्ती, सोहरावर्दी, कादरी और नक्सबन्दी। इन्होंने भारत में प्रचलित प्रेम कथाओं को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना की।

ये एकेश्वरवाद में विश्वास करते हैं। यह कवि अपने ग्रंथ में मौहम्मद साहब की स्तुति करते हैं। फिर अपने गुरु का परिचय देते हैं तथा अपने समय के सम्राट की तारीफ करते हैं और

तब कथा कहते हैं। इन्होंने अवधी भाषा में महाकाव्य लिखे हैं तथा दोहे - चौपाई की उसी पद्धति का प्रयोग किया है जिस पद्धति में आगे चलकर तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना की है। मुल्लादाऊद, कुतबन शेख, मलिक मौहम्मद जायसी, कासिम शाह आदि ने महाकाव्यों की रचना की। ये सभी कवि बा-शरा थे अर्थात् इस्लाम के शास्त्र को मानते थे। इनकी कविता में नायिका परमात्मा की प्रतीक और नायक आत्मा का प्रतीक होता है। उनके अनुसार ईश्वर प्रेममय, सुन्दर और कल्याणकारी होता है। ये सभी कवि "प्रेम की पीर" के कवि कहलाते हैं। 'प्रेम करने से दुःख होता है' मीरा के इस कथन पर सूफ़ियों का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। राजस्थान में मेड़ता, जहाँ की मीरा रहने वाली थी, नागौर और अजमेर के बीच स्थित है। उस दौर में इन दोनों शहरों पर सूफ़ियों का जबर्दस्त असर रहा है। अतः मेड़ता भी इनसे अछूता तो नहीं ही रहा होगा। साधु -संगति में भटकने वाली मीरा इनके सम्पर्क में न आई होगी, ऐसा विश्वास करना कठिन है।

5.5.3 कृष्ण भक्ति धारा

हिन्दी में कृष्ण भक्ति धारा का प्रारंभ सूरदास से माना जाता है। सूरदास ने वल्लभाचार्य की प्रेरणा और उपदेशों से कृष्ण की लीलाओं का गान किया। राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन संस्कृत में जयदेव ने किया। इनके पश्चात चण्डीदास और विद्यापति ने राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं का चित्रण किया। सूरदास ने अपना काव्य ब्रजभाषा में लिखा। उन्होंने "सूरसागर" के मुक्तक पदों में अपने काव्य की रचना की। सूरदास के प्रभाव से आगे चलकर हिन्दी में कृष्ण काव्य की सुदीर्घ परंपरा चली। रीतिकाल की नायक-नायिका भी कृष्ण और राधा ही थे। उन्हीं के प्रभाव से आगे आने वाले वर्षों में ब्रज भाषा संपूर्ण हिन्दी प्रदेश की काव्य भाषा बन गई। मीरा इस कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय की प्रमुख कवयित्री थी। उन्होंने गोपी भाव से कृष्ण के प्रति अपना प्रेम निवेदन किया। इस संदर्भ में आप इस पाठ्यक्रम के खंड-2 की इकाई-6 एवं इकाई-7 में विस्तार से अध्ययन करेंगे। सूरदास के साथ अष्टछाप के अन्य कवि भी हुए हैं, जिनकी जानकारी आपको इकाई में दी जा चुकी है। इसी धारा में रसखान जैसे भाव-प्रवण मुस्लिम कवि भी हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर के काव्य को लोक रंजन का काव्य कहा है।

5.5.4 राम भक्ति धारा

रामभक्ति काव्य का प्रारंभ आदि कवि बाल्मीकि के "रामायण" से माना जाता है। यह परंपरा कालिदास और भवभूति से होती हुई तुलसीदास, केशवदास, मैथिलीशरण गुप्त और निराला तक अनवरत चली आई है। इस परंपरा का संबंध रामानंद से माना जाता है। रामानंद ने लोकभाषा को साहित्य और चिंतन का माध्यम बनाने की प्रेरणा दी। भक्ति काल के कवियों का मत है कि राम और कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और दोनों तत्वतः एक ही है। राम त्रेता युग में हुए थे और कृष्ण द्वापर में हुए थे। भक्तिकालीन राम भक्ति काव्य धारा के प्रमुख तथा विशिष्ट कवि तुलसीदास हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास के काव्य को "लोकरक्षा" का काव्य कहा है।

तुलसीदास ने "रामचरित मानस" सहित कुल 12 ग्रंथों की रचना की है। उनकी काव्य भाषा अवधी है। दोहा-चौपाई शैली में उन्होंने महाकाव्य की रचना की। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में वर्णाश्रम धर्म की पुनः स्थापना का प्रयास किया तथा कबीर आदि निर्गुण संतों की मान्यताओं का खंडन किया। मीरा का इस भक्ति परंपरा से कोई विशेष संबंध नहीं रहा। एकाध स्थान पर मीरा ने अपने आराध्य को "राम" के नाम से संबोधित अवश्य किया है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि न तो मीरा ने महाकाव्य की रचना की और न उन्होंने अवधी में कुछ लिखा। ईश्वर के प्रत्येक रूप का समर्थन करने वाली मीरा ने किसी भी सम्प्रदाय के विरुद्ध कुछ नहीं कहा।

5.6 सारांश

भक्ति आंदोलन केवल हिन्दी साहित्य का आंदोलन ही नहीं था अपितु वास्तविक रूप में अखिल भारतीय आंदोलन था। भक्ति आंदोलन की शुरूआत ईसा से पाँचवीं-छठी शताब्दी में ही हो गई थी। दक्षिण भारत के तमिल प्रांत के आलवार भक्तों की वाणियों द्वारा भक्ति का प्रसार हुआ। यह भक्ति की धारा कर्नाटक होते हुए महाराष्ट्र पहुँची और फिर सीमावर्ती प्रदेश में इसका विस्तार होता गया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन फैल गया। भक्तिकाल के सभी कवि पहले भक्त थे और बाद में कवि। लेकिन सभी भक्त कवियों के काव्य की अपनी अलग पहचान है। सूरदास की भक्ति सख्य भाव की है और वे अपने आराध्य कृष्ण को सखा के रूप में भजते हैं। दूसरी ओर तुलसी की भक्ति दास्य भक्ति है। मीरा अपने कृष्ण को प्रियतम के रूप में भजती हैं।

भक्ति आंदोलन के उदय से पूर्व देश में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव था। शंकराचार्य, कुमारिल, उदयन आदि मीमांसक और वेदान्तिक आचार्यों ने भारत से बौद्धधर्म के निष्कासन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दक्षिण में शंकराचार्य के विरोध में नए आचार्य आए। उत्तर में भक्ति आंदोलन के प्रसार में रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य आदि आचार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

भक्ति आंदोलन में प्रमुख चार धाराएँ रही हैं - निर्गुण भक्ति धारा या सन्तमत, सूफ़ी काव्यधारा, कृष्ण भक्ति और रामभक्ति काव्य परम्परा। सगुण भक्ति में ईश्वर के अवतारी रूप की उपासना की जाती है। वही ईश्वर कृष्ण, राम आदि विविध रूपों में आता है। सगुण भक्तों ने नवधा भक्ति को विशेष महत्व दिया। भक्ति आंदोलन के सभी कवियों की तरह मीरा भी परमात्मा के समर्थ महिमाशाली व्यक्तित्व में अटूट विश्वास करती हैं। वे अवतारवाद में विश्वास करती हैं और कृष्ण के विविध अवतारों का अपने काव्य में जिक्र भी करती हैं। मीरा अपनी कविता में मिथ्याचारी लोगों की संगति का विरोध करती हैं और रागानुगा भक्ति का पालन करती हैं। वे कृष्ण से प्रेम करती हैं और यही उनके राग आधार है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भक्ति के स्वरूप और मीरा की भक्ति का विश्लेषण कर सकते हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन के उदय और विकास पर प्रकाश डालिए।
2. भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए मीरा की भक्ति की विशेषताएँ बताइए।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिएः
   क) रामानुजाचार्य
   ख) मध्वाचार्य

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – सुमन राजे
4. मीरा ना पदो – भूपेन्द्र बालकृष्ण त्रिवेदी

SOH-IGNOU/P.O. 1T/November, 2014

ISBN : 978-81-266-6818-2